# धन के न्यायपूर्ण बंटवारे के लिए डाईवर्सिटी ही क्यों?

एच.एल. दुसाध

# धन के न्यायपूर्ण बंटवारे के लिए
# डाइवर्सिटी ही क्यों!

एच. एल. दुसाध

बहुजन डाइवर्सिटी मिशन
दिल्ली

पहला संस्करण : 2018

प्रकाशक : **बहुजन डाइवर्सिटी मिशन**
B-1,149/9 किशन गढ़, वसंत कुंज
नई दिल्ली-110070, संपर्क : 011-26125973
E-mail : hl.dusadh@gmail.com

प्रशासनिक कार्यालय :
2/1467, आदिल नगर, कल्याणपुर,
लखनऊ-226022
मो. : 9654816191

© **लेखक**

**मूल्य : 40 रुपये**

रचना : **धन के न्यायपूर्ण बंटवारे के लिए : डाइवर्सिटी ही क्यों!**
लेखक : एच. एल. दुसाध
आवरण : राकेश
शब्दांकन : कम्प्यूटेक सिस्टम, शाहदरा, दिल्ली-32
मुद्रक : क्विक ऑफसेट, दिल्ली-94

# अनुक्रम

1. **सामाजिक परिवर्तन और डाइवर्सिटी** **9**
भारतीय समाज की अपरिवर्तनशीलता–9 इक्कीसवीं सदी में भी अपरिवर्तित : जाति समाज–10 परिवर्तनशील : श्रेणी समाज–10 वर्ण-व्यवस्था : आर्यों के हित में प्रवर्तित एक आरक्षण व्यवस्था–11 सामाजिक-परिवर्तन में बाधक : हिन्दू आरक्षण–12 हिन्दू आरक्षण पर आईपीसी का हमला–12 आधुनिक आरक्षण के प्रवर्तक : फुले–13 आरक्षण से शुरू सामाजिक परिवर्तन–13 आरक्षण के सहारे मूलनिवासियों को मुख्यधारा से जोड़ना : एक वैश्विक परिघटना–14 दूसरे देशों की तुलना में : भारत के आरक्षण का दायरा छोटा–15 आरक्षण के प्रति ईर्ष्याकातर : शासक वर्ग–15 भारतीय बौद्धिक क्षितिज पर : डाइवर्सिटी का उदय–16 भोपाल घोषणा का असर–17 बड़ा आकार लेता डाइवर्सिटी आंदोलन–18 सही दिशा में जा रहे हैं डाइवर्सिटी आंदोलनकारी–18 भूमंडलीकरण के दौर में अप्रासंगिक होती आरक्षण नीति–19 डाइवर्सिटी की जड़ें आंबेडकरवाद में–19

2. **सौ रोगों की एक दवा : डाइवर्सिटी** **22**
सभ्यताओं का टकराव : धार्मिक व सांस्कृतिक विविधताओं में व्याप्त शत्रुता का परिणाम–22 ग्लोबल वार्मिंग : मानव-जाति के समक्ष नई चुनौती–23 पर्यावरण और संपोषित विकास–24 पर्यावरण की रक्षा के लिए लामबंद हुआ अंतर्राष्ट्रीय जगत–24 जैविक विविधता (bio-diversity) पर खास चिंता–24 जैविक विविधता के लिए घातक : हिंदू धर्म-संस्कृति–25 भारत में जैव -विविधता का संकट–25 मानव-जाति की सबसे बड़ी समस्या : आर्थिक और सामाजिक गैर-बराबरी–26 आर्थिक और सामाजिक विषमता कारण : शक्ति के स्रोतों में सामाजिक और लैंगिक विविधता का असमान प्रतिबिम्बन–26 समताकामियों द्वारा धार्मिक-शक्ति की उपेक्षा–27 सामाजिक-आर्थिक विषमता के खात्मे के लिए : शक्ति के केन्द्रों में सामाजिक और लैंगिक विविधता का प्रतिबिम्बन–27 शक्ति के असमान बंटवारे से पैदा हुआ : क्रांतियों का सैलाब–28 शक्ति-वितरण के लिए : लोकतांत्रिक व्यवस्था–28 विविधता नीति के सहारे विषमता के खात्मे का सर्वोत्तम मिसाल : दक्षिण अफ्रीका–29 भारत में सामाजिक और लैंगिक विविधता का प्रतीकात्मक प्रदर्शन–30 सामाजिक और लैंगिक विविधता की

सबसे बड़ी दुश्मन : वर्ण-व्यवस्था–31 स्वाधीन भारत के सुपर-स्टार नेताः लोकतंत्र-विरोधी–31 बहुजन डाइवर्सिटी मिशन का उदय–32 डाइवर्सिटी से ही मुमकिन है : धन का न्यायपूर्ण बंटवारा–33 भ्रष्टाचार को कम करने के लिए : डाइवर्सिटी–34 लोकतंत्र की सलामती के लिए : डाइवर्सिटी–35 मुक्कमल महिला सशक्तीकरण के लिए : डाइवर्सिटी–36 सच्चर रिपोर्ट में उभरी मुस्लिम समुदाय की बदहाली की तस्वीर को खुशहाली में बदलने के लिए : डाइवर्सिटी–36 आरक्षण से उपजते गृहयुद्ध के हालात से निजात पाने के लिए : डाइवर्सिटी– 36 नक्सलवाद के शमन के लिए : डाइवर्सिटी–36 अस्पृश्यों को हिन्दुओं के अत्याचार से बचाने के लिए : डाइवर्सिटी–37 बहुर्राष्ट्रीय कंपनियों को रोकने के लिए : डाइवर्सिटी–37 विविधता में एकता को सार्थकता प्रदान करने के लिए : डाइवर्सिटी–38 ब्राह्मणशाही के खात्मे के लिए : डाइवर्सिटी–38 सामाजिक प्रदूषण से निर्लिप्त : राजनीतिक पार्टियां–39 पर्यावरणवादियों से प्रेरणा लेने की जरूरत–39

# लेखकीय

जनवरी, 2018 में आई ऑक्सफाम की रिपोर्ट, खुद में एक जलजला थी। इसमें यह बताया गया था कि देश की सृजित दौलत का 73% हिस्सा टॉप की 1% आबादी वाले लोगों के हाथ मे चला गया है। ऐसा हो सकता है, इसका संकेत वैश्विक धन बँटवारे पर काम करने वाली संस्था, 'क्रेडिट सुइसे' ने 2015 में ही दे दिया था। तब क्रेडिट सुइसे की रिपोर्ट में यह तथ्य उभर कर आया था कि देश के टॉप 1% लोगों के हाथ में 57% और टॉप की 10% आबादी के पास 81% दौलत है : नीचे की 50% आबादी सिर्फ 4.1% दौलत पर गुजर बसर करने के लिए विवश है। क्रेडिट सुइसे की उस रिपोर्ट के बाद ही देश के हुक्मरानों और खास कर 4.1% धन पर गुजर बसर करने वाले लोगों में खलबली मच जानी चाहिए थी। पर, अपवाद रूप से कुछेक लोगों छोड़ दिया जाय तो न तो 2015 में कोई हलचल हुई और न ही 2018 में 1% टॉप की आबादी के हाथ में 73% धन चले जाने से आज कही कोई बेचैनी नजर आती है। चारों ओर गहरी निर्लिप्तता का आलम है। बहरहाल आर्थिक जलजला सरीखी ऑक्सफाम की रिपोर्ट को लेकर भले ही राष्ट्र निर्लिप्त हो, किन्तु इस रिपोर्ट ने बता दिया है कि भारत में आर्थिक विषमता चरम पर पहुँच चुकी है। खैर, जो थोड़े लोग इस भयावह विषमता को लेकर थोड़ा-बहुत चिन्तित हैं, वे निश्चय ही यह जानने के लिए इच्छुक होंगे कि इसके लिए मुख्य रूप से जिम्मेवार कौन है!

दुःख के साथ कहना पड़ता है आजाद भारत के शुरुआती तीन चार दशक तक देश के शीर्ष नेतृत्त्व एवं नीति निर्माताओं में राष्ट्र के प्रति समर्पण दिखाया : आधारभूत उद्योग-धंधे खड़ा कर देश को विकसित करने का बढ़िया प्रयास किया, किन्तु उस विकास को विविधतामय भारत के विविध समूहों के मध्य वितरित कर भारतीयता को मजबूत करने का प्रयास नहीं किया। ऐसा इसलिए कि चूँकि जाति समाज में व्यक्ति की सोच स्व-जाति/वर्ण के चेतना के मध्य घूर्णित होती रहती है और यह चेतना बड़े से बड़े साधु-संत, लेखक-कलाकार तक में समग्र-वर्ग की चेतना विकसित ही नहीं होने दी, इसलिए आजाद भारत के शासक, जो मुख्यतया सवर्ण समाज से रहे, अपनी स्व-जातिय/वर्णीय स्वार्थ के चलते ऐसी योजना न बना सके जिससे थोड़ा-बहुत जो भी विकास हो रहा है, उसका तमाम सामाजिक समूहों के मध्य वाजिब बंटवारे का मार्ग प्रशस्त हो। इस स्व-जातिय/वर्णीय सोच के कारण

ही वे 25 नवम्बर, 1949 को डॉ. आंबेडकर द्वारा आर्थिक और सामाजिक विषमता के खात्मे से जुड़ी दी गयी चेतावनी की अनदेखी कर गए। हाँ, उन्होंने एक काम जरुर किया कि वे एससी/एसटी को संविधान द्वारा प्रदान किये गये आरक्षण को, अनिच्छापूर्वक ही सही, किसी तरह झेलने की मानसिकता विकसित कर लिया। किन्तु जब 7 अगस्त, 1990 को मंडल की रिपोर्ट प्रकाशित हुई, भारत के परम्परागत विशेषाधिकारयुक्त सुविधाभोगी वर्ग की वर्णवादी चेतना नाटकीय रूप से तुंग पर पहुँच गयी।

मंडल के खिलाफ जहां विशेषाधिकारयुक्त तबकों के युवा आत्म-दाह और राष्ट्र की संपदा दाह में प्रवृत हुए, वहीं इस तबके की हिमायती एक पार्टी ने राम मंदिर का मुद्दा उठाकर राष्ट्र की हजारों करोड़ की संपदा और असंख्य लोगों की प्राण हानि कराने के साथ भ्रातृत्व के कंगाल भारत की थोड़ी-बहुत दिख रही एकता को भी छिन्न-भिन्न कर दिया, जो विशुद्ध रूप से देश-विरोधी कार्य था। लेकिन सबसे खतरनाक काम किया नरसिंह राव ने, जिन्होंने आरक्षण को कागजों तक सिमटाने के कुत्सित इरादे से 24 जुलाई, 1991 को भूमंडलीकरण की अर्थनीति अडॉप्ट कर निजीकरण, उदारीकरण, विनिवेशीकरण का सैलाब बहा दिया। नरसिंह राव द्वारा शुरू किये गए इस काम को आगे बढ़ाने में अटल बिहारी वाजपेयी और मनमोहन सिंह ने एक दूसरे होड़ लगाया। 24 जुलाई, 1991 को गृहित अर्थनीति के फलस्वरूप ही लाभजनक सरकारी उपक्रमों के औने-पौने दामों में निजीक्षेत्र के हाथों में जाने, सुरक्षा से जुड़े उपक्रमों में विदेशी निवेश, अमीर-गरीब की खाई आश्चर्यजनक रूप से बढ़ने का सिलसिला शुरू हुआ जो आज डरावना रूप अख्तियार कर चुका है। और यह सब किया गया सिर्फ और सिर्फ आरक्षण के खात्मे को ध्यान में रखकर। बहरहाल नरसिंह राव, अटल बिहारी वाजपेयी और मनमोहन सिंह ने आरक्षण के खात्मे को ध्यान में रखकर देश का बुनियादी आर्थिक ढांचा ध्वस्त करने और अर्थतंत्र निजीक्षेत्र के मालिकों और विदेशियों के हाथों में देने का जितना काम बीस सालों में किया, उतना नरेंद्र मोदी ने तीन सालों में कर दिखाया है।

## 1% लोगों के हाथ में 58% से सीधे 73% दौलत जाने के लिए जिम्मेवार : मोदी की सवर्णपरस्त नीतियां!

इसमें कोई शक नहीं कि मंडल की रिपोर्ट से आरक्षण का जो विस्तार हुआ, उसे महज कागजों की शोभा बनाने में मंडल उत्तरकाल में केंद्र की सत्ता पर काबिज कांग्रेस और भाजपा– दोनों दलों के प्रधानमत्रियों ने एक दूसरे से होड़ लगाया। लेकिन आर्थिक विषमता को चरम बिंदु पर पहुँचाने के लिए सर्वाधिक जिम्मेवार वर्तमान प्रधानमंत्री मोदी ही हैं। इसे समझने के लिए नयी सदी में टॉप के 1% आबादी की 73% दौलत पर कब्जे का सिंहावलोकन कर लेना होगा।

काबिले गौर है कि कई अंतरराष्ट्रीय अध्ययनों के मुताबिक टॉप की 1% आबादी के पास 2000 में 37% दौलत हुआ करती थी, जो 2005 में बढ़कर 42%, 2010 में 48%, 2012 में 52% तथा 2016 मे 58% हो गयी। इससे जाहिर है कि 2000-2016 अर्थात 16 सालों में 1% वालों की दौलत में कुल इजाफा 21% का हुआ, जबकि 2016 के 58 के मुकाबले 2017 मे 73% पहुचने का मतलब हुआ कि एक वर्ष में उनकी दौलत में सीधे 15% की बढ़ोतरी हो गयी। है न यह आश्चर्य! और यह आश्चर्य इसलिए घटित हुआ क्योंकि सबका साथ, सबका विकास का नारा देने वाले संघ प्रशिक्षित नीची जाति के नरेंद्र मोदी को दूसरे प्रधानमंत्रियों की तुलना में जन्मजात विशेषाधिकारयुक्त तबकों का साथ कुछ ज्यादे ही पसंद है : मंडलवादियों के विनाश के प्रति कुछ ज्यादे ही ललक है। इस कारण ही उनकी अतिसवर्णपरस्त नीतियों, जिसे प्रगतिशील बुद्धिजीवी कारपोरेटपरस्त नीतियां बताकर बहुजनों को भ्रमित करते रहते हैं, के कारण ही 1% वालों की दौलत में 1 साल के मध्य ही 15% वृद्धि का त्रासदपूर्ण चमत्कार घटित हो गया है।

## टॉप की 10% आबादी के कब्जे में 90% से अधिक दौलत!

बहरहाल वैसे तो भयावह विषमता को लेकर कोई खास चर्चा नहीं हो रही है, जो भी हो रही है, वह टॉप के 1% वालों की दौलत को लेकर हो रही है। पर, यदि टॉप की 10% आबादी वालों की दौलत का आंकड़ा मिलता तो स्थिति और बदतर नजर आती। लेकिन टॉप के 10% वालों की चर्चा न होने का कारण यह है कि ऑक्सफाम की ताजी रिपोर्ट में शायद अलग से टॉप की 10% आबादी की दौलत का आकड़ा सामने नहीं आ पाया है। पर, यदि हम क्रेडिट सुइसे की 2015 वाली रिपोर्ट के आधार पर आंकलन करें तो शर्तिया तौर पर 10% टॉप वालों की दौलत 90% से ज्यादे का आकड़ा पार कर गयी होगी। अब जैसा कि पूर्व पंक्तियों में बताया गया है कि मोदी की चरम सवर्णपरस्त नीतियों के कारण ही सवर्णो की दौलत मे आश्चर्यजनक जम्प आ रहा है, इसलिए यह मानकर चलना चाहिए कि आनेवाले कुछ वर्षो में, विशेषकर 2019 में यदि मोदी सरकार की वापसी हो जाती है, देश की दौलत पर सवर्णो का 95% से भी ज्यादा कब्जा कायम हो सकता है। फिर तो बहुजनों के विशुद्ध भीखमंगों की स्थिति में पहुंचने में कोई कोर कसर बाकी ही नहीं रह जाएगी?

## आर्थिक विषमता का भीषण कुप्रभाव!

अतः बीडीएम से जुड़े लोग मानते हैं कि ऑक्सफाम की रिपोर्ट आर्थिक विषमता का एवरेस्ट है : यह खुद में एक आर्थिक जलजला है। यदि हम इससे अब भी सावधान नहीं हुये तो सदियों के शोषित-निष्पेषित दलित, आदिवासी, पिछड़े और

इनसे धर्मांतरित बहुजन निकट भविष्य में ही भिखारी और पशुओं की जिंदगी जीने के लिए विवश हो जाएंगे और शायद इस देश की बची खुची शांति, प्रभुसत्ता बुरी तरह खतरे पड़ जाएगी। स्मरण रहे आर्थिक विषमता की कोख से ही भूख, कुपोषण, अशिक्षा, गरीबी, बेरोजगारी, विच्छिन्नता और आतंकवाद इत्यादि समस्यायों का जन्म होता है। इसके भयावह परिणामों से ही चिंतित ऑक्सफैम इंडिया की सीईओ निशा अग्रवाल ने ताजी रिपोर्ट पर कहा है—'अरबपतियों की बढती संख्या अच्छी अर्थव्यवस्था का नहीं, खराब होती अर्थव्यवस्था का संकेत है। जो लोग कठिन परिश्रम करके देश के लिए भोजन उगा रहे हैं, इन्फ्रास्ट्रक्चर का निर्माण कर रहे हैं, फैक्टरियों में काम कर रहे हैं, उन्हें अपने बच्चों की फीस भरने, दवा खरीदने और दो वक्त का खाना जुटाने के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है। अमीर- गरीब के बीच बढती खाई लोकतंत्र को खोखला कर रही है और भ्रष्टाचार को बढ़ावा दे रही है।' इस कारण ही 2015 में क्रेडिट सुइसे की रिपोर्ट प्रकाशित होने के बाद बहुत से अखबारों ने लिखा था—'गैर-बराबरी अक्सर समाज में उथल-पुथल की वजह बनती है। सरकार और सियासी पार्टियों को इस समस्या को गंभीरता से लेना चाहिए। संसाधनों और धन का न्यायपूर्ण बंटवारा कैसे हो, यह सवाल अब प्राथमिक महत्व का हो गया है।'

## इतिहास की पुकार : धन-दौलत के न्यायपूर्ण बंटवारे के लिए आगे आयें बहुजन समाज के प्रबुद्धजन!

आर्थिक गैर-बराबरी के भयावह कुपरिणामों को देखते हुये आज इतिहास की पुकार है कि धन के न्यायपूर्ण बंटवारे के लिए बहुजन समाज के प्रबुद्धजन सामने आयें। बहुजन समाज के ही प्रबुद्धजनों को इसलिए सामने आने की जरूरत है, क्योंकि एवरेस्ट सरीखी आर्थिक विषमता से गैर-बहुजन समाज के कुछ अपवाद लोगों को छोड़कर, अधिकांश को कुछ लेना-देना नहीं है और खुद बहुजन समाज के आम सामाजिक कार्यकर्ता ब्राह्मणवाद के खात्मे और बहुजनराज लाने मे निमग्न हैं। इतिहास की इस मांग पर बीडीएम से जुड़े लेखकों ने अपना कर्तव्य स्थिर कर लिया है और वे 15 मार्च, 2018 से धन के न्यायपूर्ण बँटवारे हेतु डाइवर्सिटी एजेंडा लागू करवाने की एक नयी मुहिम शुरू करने जा रहे हैं। बहरहाल धन के न्यायपूर्ण बंटवारे के लिए डाइवर्सिटी ही क्यों, यही बतलाने का प्रयास इस पुस्तक में हुआ है।

**जय भीम!** **जय भारत!** **जय डाइवर्सिटी!**

दिनांक : 15 मार्च, 2018

**—एच एल दुसाध**
संस्थापक अध्यक्ष
बहुजन डाइवर्सिटी मिशन, दिल्ली

# सामाजिक परिवर्तन और डाइवर्सिटी

## भारतीय समाज की अपरिवर्तनशीलता

मानव समाज परिवर्तनशील है जैसे कि परिवर्तनशील समग्र सृष्टि है। कन्दरावासी अवस्था से मानव का उन्नत सभ्यता स्तर तक का आरोहण तो और कुछ नहीं, धारावाहिक परिवर्तन की परिणत अवस्था मात्र है। समाज आदि काल से ही अपने नित्य नये प्रयोजन से एक के बाद एक संस्कृति, प्रथा, अर्थनीति, शासन व्यवस्थादि की संरचना को जन्म देता आया है और यही सब मिल-जुलकर परिवर्तन का कारक बनते हैं। एक व्यवस्था के प्रयोजन की समाप्ति पर दूसरी व्यवस्था उसका स्थान ग्रहण करती रही है। सामाजिक व्यवस्थादि का यह रूप परिवर्तन अंत में विकास व उन्नयन के रूप में परिणत होता है। किन्तु सिर्फ रूपान्तरण नहीं, परिवर्तन जब उच्चतर से निम्नतर अवस्था में पड़े लोगों के जीवन में सुखद बदलाव लाने में सक्षम होता है, वही सामाजिक परिवर्तन प्रगति या विकास के रूप में विश्लेषित होता है। 'इस हिसाब से भारत में उन्नयनमूलक सामाजिक परिवर्तन उस परिवर्तन को ही कहा जा सकता है जो यहां की परंपरागत आर्थिक वितरण व्यवस्था (वर्ण-व्यवस्था) में वितरण-शून्यता (Non-distribution) का शिकार बनी बहुसंख्यक आबादी को राष्ट्र के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसकी हिस्सेदारी लेने की क्षमता और योग्यता अर्जन व उसे प्रमाणित करने की अपार, अबाध प्रतियोगिता का अवसर सुलभ करा सके। ऐसा परिवर्तन जो निम्न वर्ण में अवस्थित हजारों जातियों के लोगों को उच्च वर्ण वालों की भांति समाज के सभी सुख-सुविधाओं के भोग का अधिकारी बना सके। दूसरे शब्दों में Sub-stream में पड़े लोगों को Main-stream में प्रविष्ट कराने वाला परिवर्तन ही सच्चा सामाजिक परिवर्तन कहला सकता है।'[1]

सामाजिक परिवर्तन के उपरोक्त वैशिष्ट्य के आधार पर भारत समाज का आंकलन करने पर इसकी अपरिवर्तनशीलता मानव विकास के इतिहास के एक विस्मयकर व्यतिक्रम के रूप में नजर आती है। इसका यह चेहरा देख कर ही महान समाजविज्ञानी कार्ल मार्क्स ने खिन्न मन से लिखा है—'भारत के अतीत का राजनैतिक स्वरूप जितना भी परिवर्तनशील क्यों न रहा हो, सुदूर पुराकाल से लेकर वर्तमान तक इसके सामाजिक रूप में रत्ती भर भी परिवर्तन नहीं आया है—एकदम अपरिवर्तित

रह गया है। इस समाज की आर्थिक संरचना को कोई भी परिवर्तन बदल नहीं पाया है। परिणामस्वरूप दूसरे देशों के प्राचीन युग के पैट्रिशियन, नाइट्स, प्लेबियन और भूमिदास व मध्ययुग के राजा, बैरन्स, गिल्ड मास्टर, दास इत्यादि का समाज में आज कोई अस्तित्व नहीं, यह सब परिभाषाएं श्रेणी समाज वाले देशों में अर्थहीन एवं अतीत का इतिहास मात्र रह गई हैं। भारतीय समाज के प्रागैतिहासिक ब्राह्मण, शूद्रादि आज भी वही आदिम माहात्म लिए स्वमहिमा विद्यमान एवं संपूर्ण शक्ति से क्रियाशील हैं।'

## इक्कीसवीं सदी में भी अपरिवर्तित : जाति समाज

'आज के भारत के महानगरों में दूर-दूर तक मोटरगाड़ियों का जाम, बहुमंजिली इमारतों का जंगल, कम्प्यूटर, टी.वी., फ्रिज, मोबाइल फोन इत्यादि असंख्य इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों का प्रयोग; असंख्य छोटे-बड़े स्कूल, कॉलेज, हॉस्पिटलों की विद्यमानता; सेन-ऐश-चोपड़ा इत्यादि कई विश्व सुन्दरियों की उपस्थिति और मल्लिका सहरावतों की दैहिक उन्मुक्तता देखकर कइयों को भारतीय समाज के विषय में डेढ़ शताधिक वर्ष पूर्व की गई मार्क्स की टिप्पणी सुदूर अतीत की ही बात लगती होगी। लेकिन सच्चाई यह है कि उन्नीसवीं सदी में की गई मार्क्स की टिप्पणी इक्कीसवीं सदी में भी भारतीय समाज पर लागू होती है। क्योंकि सुदूर अतीत की तरह आज भी सवर्णों का देश की संपदा-संस्थाओं पर एकाधिकार है। मूल निवासी शूद्रातिशूद्र बहुतायत मात्रा में शिक्षाहीन, भूमिहीन, व्यवसायहीन है।'[2]

## परिवर्तनशील : श्रेणी समाज

बहरहाल पूर्व पंक्तियों में राजा-बैरन्स और ब्राह्मण शूद्रादि की तुलना करते हुए मार्क्स ने जो टिप्पणी की है उसे बेझिझक सामाजिक परिवर्तन के इतिहास का सार कहा जा सकता है। उन्होंने जिन राजा, बैरन्स, गिल्ड मास्टर, दास इत्यादि की चर्चा की है वे विश्वमय प्रसारित श्रेणी समाजों की स्तरीभूत मानव श्रेणियां थीं जबकि ब्राह्ममण-शूद्रादि विश्व के एकमात्र जाति/वर्ण समाज के मानव समूह। श्रेणी समाजों की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि इसमें प्रधानतः गरीब-अमीर की दो श्रेणियों में विभाजित मानव समूहों की श्रेणियां बराबर से परिवर्तनशील रहीं। ऐसे समाजों में व्याप्त प्रतियोगिता के अवसर के कारण गरीब अपने परिश्रम और उद्यम के सहारे अमीर श्रेणी में उत्तोलित थे, तो अमीर अपने दुर्व्यसनों व प्रतियोगिता में पिछड़ने के कारण गरीब की श्रेणी में स्खलित होते रहे हैं। श्रेणी समाजों का यह परिवर्तनवादी चरित्र प्राचीन रोम में भी कायम था जहां के लोग पैट्रिशियन, नाइट्स, प्लेबियन व दास के रूप में विभाजित थे। मध्ययुगीन यूरोप में उनका स्थान राजा, सामन्त, अणुसामन्त, जर्निमैन व भूमिदासों ने ले लिया। परिवर्तनशील श्रेणी समाजों के वे राजा, बैरन्स, नाइट्स, दास, भूमिदास इत्यादि विलुप्त होकर आधुनिक काल में प्रधानतः मालिक

और श्रमिक (अमीर और गरीब) श्रेणी में रह गये हैं।

## वर्ण-व्यवस्था : आर्यों के हित में प्रवर्तित एक आरक्षण व्यवस्था

राजा, बैरन्स, गिल्ड मास्टर, दास इत्यादि मानव समूहों के विपरीत ब्राह्मण, शूद्रादि एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की उपज हैं जो मूलतः संपदा, संसाधनों और पेशों की वितरण-व्यवस्था रही है। जी हां वर्ण-व्यवस्था राष्ट्र की संपदा, संसाधनों, पेशों व सामाजिक मर्यादा की वितरण-व्यवस्था है।[3] इसके आर्थिक चरित्र को ही दृष्टिगत रखकर गांधी जी ने कहा था, 'वर्ण-व्यवस्था अवश्य ही व्यवसाय के संदर्भ में बनी है।'[4] दैवियकृत रूप में प्रचारित वर्ण-व्यवस्था किन्तु असल में आर्य मनीषियों द्वारा प्रवर्तित है। उन्होंने हिन्दू साम्राज्यवाद को अटूट रखने और अपने भावी पीढ़ियों के हाथ में अध्ययन-अध्यापन, शासन-प्रशासन, सैन्यकार्य, भू-स्वामित्व, व्यवसाय-वाणिज्यादि का अधिकार चिरस्थाई तौर पर सौंपने की गरज से कर्म-शुद्धता की अनिवार्यता और कर्म-संकरता की निषेधाज्ञा को इसके साथ ओतप्रोत रूप से जड़ित कर दिया।[5] वर्ण-व्यवस्था में प्रत्येक वर्ण के लिए ये पेशे निर्दिष्ट रहे। ब्राह्मणों के लिए अध्यापन, पौरोहित्य, राज्य संचालन में उपदेष्टागिरी क्षत्रियों के लिए शासन-प्रशासन, सैन्यवृत्ति, भूस्वामित्व तो वैश्यों के लिए निर्दिष्ट रहे पशुपालन, व्यवसाय-वाणिज्यादि कर्म। शूद्रों के लिए निर्दिष्ट रहा ऊपर के तीन वर्णों के लिए सेवा का कार्य। पर, इस सेवा कार्य के बदले में उन्हें पारिश्रमिक मांगने का अधिकार नहीं रहा। पर, चूंकि कर्म शुद्धता की अनिवार्यता और कर्म संकरता की निषेधाज्ञा के कारण सभी वर्णों के लोग निज-निज पेशे/कर्म तक सीमित रह गये, इसलिए वर्ण-व्यवस्था ने एक आरक्षण-व्यवस्था का रूप ले लिया, जिसे हिन्दू आरक्षण भी कहा जा सकता है।[6]

जाति/वर्ण-व्यवस्था मूलतः एक आर्थिक वितरण व्यवस्था है और इसका लक्ष्य प्राचीनतम उपनिवेशवादियों के वंशधरों के हाथ में देश की संपदा, संसाधनों का एकाधिकार आरक्षित ही करना था, इसका संकेत खुद आर्य पुत्र पंडित जवाहर लाल नेहरू की इस टिप्पणी में भी देखा जा सकता है। उन्होंने लिखा है, 'वर्ण-भेद, जिसका लक्ष्य आर्यों को अनार्यों से जुदा करना था, अब खुद आर्यों पर अपना यह असर लाया कि ज्यों-ज्यों धंधे बढ़े और इनका आपस में बंटवारा हुआ, त्यों-त्यों वर्गों ने वर्ण या जाति की शक्ल ले ली। इस तरह एक ऐसे समय में, जब फतह करने वालों का यह कायदा रहा कि हारे हुए लोगों को या तो गुलाम बना लेते थे, या बिल्कुल मिटा देते थे, वर्ण-व्यवस्था ने एक शान्ति वाला हल पेश किया और धंधों की बंटवारे की जरूरत से इसमें वैश्य बने, जिनमें किसान, कारीगर और व्यापारी लोग थे; क्षत्रिय हुए जो हुकूमत करते या युद्ध करते थे। ब्राह्मण बने जो पुरोहिती करते थे, विचारक थे, जिनके हाथ में नीति की बागडोर थी और जिनसे यह उम्मीद की जाती थी कि वे जाति के आदर्शों की रक्षा करेंगे। इन तीनों वर्णों से नीचे शूद्र थे, जो मजदूरी करते और ऐसे धंधे करते थे, जिनमें खास जानकारी की जरूरत नहीं होती और

जो किसानों से अलग थे। कदीम वाशिन्दों से भी बहुत से इन समाजों में मिला लिये गये और उन्हें शूद्रों के साथ इस समाज व्यवस्था में सबसे नीचे का दर्जा दिया गया।'[7]

## सामाजिक-परिवर्तन में बाधक : हिन्दू आरक्षण

वर्ण-व्यवस्था के वितरणवादी स्वरूप पर टिप्पणी करते हुए कवि राकेश पांडेय ने मेरी पुस्तक 'सामाजिक परिवर्तन में बाधक : हिन्दुत्व' का संपादकीय लिखते हुए कहा है, 'समाज के एक तबके ने अपने निहित वर्ग स्वार्थों की रक्षा के लिए वर्ण-व्यवस्था की रचना की।...इस क्रम में पेशों का बंटवारा किया गया। ब्राह्मण को पठन-पाठन और पौरोहित्य; क्षत्रिय को शासन-प्रशासन का अधिकार; वैश्य को व्यापार-वाणिज्य तथा शूद्र को सेवा का अधिकार मिला।'[8] बहरहाल कथित ईश्वरकृत धार्मिक व्यवस्था में जब पेशों की विचलनशीलता (Profession Mobility) को निषिद्ध कर इसे हिन्दू आरक्षण व्यवस्था के रूप में विकसित कर दिया गया, तब मूलनिवासी शूद्रातिशूद्र चिरस्थाई तौर पर नर-पशु में परिणत और धन-धरती से शून्य होने के लिए अभिशप्त हुए। फलतः विगत साढ़े तीन हजार वर्षो से बौद्ध काल को छोड़कर, नर-पशुओं के लिए शिक्षक, पुरोहित, भू-स्वामी, सैनिक, राजा, व्यवसायी इत्यादि बनने के सारे रास्ते बन्द रहे।[9] शिक्षाहीन, भूमिहीन, व्यवसायहीनों के जीवन में आर्थिक बदलाव के रास्ते में हिन्दू आरक्षण एवरेस्ट बनकर खड़ा रहा। मानव सभ्यता के विशाल कालखण्ड में समग्र विश्व में जितने लोगों को साम्राज्यवादी शक्तियों की घोरतर वंचना व अमानवीयता का शिकार बनना पड़ा है, वह संख्या अकेले भारत के नर-पशुओं के समक्ष छोटी पड़ जायेगी। नर-पशुओं की संपूर्ण मानव के रूप में तब्दीली और धन-धरती में हिस्सेदारी ही भारत में सामाजिक परिवर्तन को सार्थकता प्रदान कर सकती है, जो नहीं हुआ, इसीलिए ही दुनिया के समाजविज्ञानी इसे एक अपरिवर्तित व जड़ समाज कहकर निंदित करते रहे हैं।[10]

## हिन्दू आरक्षण पर आईपीसी का हमला

बहरहाल सामाजिक परिवर्तन का जो दरवाजा क्षत्रियों की तलवारों के साये में संरक्षित धर्मशास्त्रों के कानूनों द्वारा बन्द रहा, उसे बौद्धोत्तर काल में पहली बार तोड़ने का साहसिक उद्योग लार्ड मैकाले के नेतृत्व में अंग्रेजों ने लिया। उन्होंने अपने शास्त्र आईपीसी द्वारा न सिर्फ कानून की नजरों में ब्राह्मण-अब्राह्मण सबको एक बराबर किया बल्कि हिन्दू आरक्षण के वंचितों को भू-स्वामित्व व शिक्षार्जन का अधिकार प्रदान करने के साथ ही उन सभी पेशों को अपनाने का अधिकार दे दिया जो मात्र हिन्दू साम्राज्यवाद के सुविधाभोगी वर्ग के लिए आरक्षित थे।[11] लेकिन सदियों पुरानी हिन्दू आरक्षण व्यवस्था द्वारा शूद्रातिशूद्र इस कदर अयोग्य व अपंग बना दिये गये थे कि ब्रितानी सरकार प्रदत्त अवसरों का लाभ न उठा सके।

## आधुनिक आरक्षण के प्रवर्तक : फुले

उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध के शेष जिन दिनों कार्ल मार्क्स ब्राह्मण-शूद्रादि की विद्यमानता में भारतीय समाज की अपरिवर्तनशीलता पर अपना माथा पीटते हुए सर्वहारा वर्ग की मुक्ति के निर्णायक सूत्रों का तानाबाना तैयार कर रहे थे, उन्हीं दिनों यूरोप से हजारों मील दूर पूना में एक शूद्र भी सामाजिक परिवर्तन का सूत्र रचने में निमग्न था। नाम था ज्योति राव फुले। बहरहाल जब सामाजिक क्रांति के पितामह ने सामाजिक परिवर्तन की बाधाओं के प्रतिकार में खुद को निमग्न किया, तो उन्हें बाधा के रूप में नजर आयी हिन्दू आरक्षण उर्फ वर्ण-व्यवस्था। उन्होंने हिन्दू आरक्षण को सामाजिक परिवर्तन की बाधा और शूद्रातिशूद्रों की दुर्दशा का मूल कारण समझकर उसके प्रतिकार के लिए एक वैकल्पिक व्यवस्था को जन्म देने का मन बनाया। उन्होंने कांटे से कांटा निकालने की जो परिकल्पना की, वही आरक्षण रूपी औजार के रूप में 1873 में 'गुलामगिरी' के पन्नों से निकल कर जनता के बीच आयी।[12]

उन्होंने 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' के भारतीय संस्करण 'गुलामगिरी'[13] में लिखा, 'हमारी दयालु सरकार (अंग्रेज सरकार) को भट्ट ब्राह्मणों को उनकी संख्यानुसार सरकारी कार्यालयों में नियुक्ति नहीं करना चाहिए, ऐसा मेरा कहना नहीं है। किन्तु उसके साथ ही अन्य छोटी जातियों के लोगों की उनकी जनसंख्या के अनुसार नियुक्ति होनी चाहिए। इससे सभी भट्ट ब्राह्मणों को सरकारी नौकरी के लिए एक साथ मिल कर हमारे अज्ञानी शूद्रों को नुकसान पहुंचाना संभव नहीं होगा।' गुलामगिरी की ये पंक्तियां ही परवर्ती समय में भारत में समााजिक न्याय का मूलमंत्र बनी। आज दलित-पिछड़ों को शासन-प्रशासन व डॉक्टरी, इंजीनियरिंग, अध्यापन व छोटे-बड़े विभिन्न सरकारी सेवाओं में जो भागेदारी मिली है, इसमें इन पंक्तियों की ही महती भूमिका है। इन्हीं पंक्तियों को पकड़कर शाहूजी महाराज ने 26 जुलाई, 1902 को शूद्रातिशूद्रों के लिए पहली बार आरक्षण लागू कर सामाजिक न्याय की शुरूआत की तो पेरियार ने 27 दिसम्बर, 1929 को मद्रास प्रान्त में बड़े पैमाने पर दलित-पिछड़ों को नौकरियों में प्रतिनिधित्व दिलाया।[14]

## आरक्षण से शुरू सामाजिक परिवर्तन

लेकिन ज्योतिबा फुले ने हिन्दू आरक्षण की काट के लिए जिस औजार का आविष्कार किया, वह सबसे प्रभावी रूप में तब सामने आया, जब डॉ. आंबेडकर ने संविधान के द्वारा इसके इस्तेमाल का व्यापकतर अवसर सुलभ कराया। वास्तव में अगर Sub Stream में पड़े लोगों का Main Stream में प्रविष्ट कराने वाला परिवर्तन ही सच्चा सामाजिक परिवर्तन के रूप में विशेषित हो सकता है तो आंबेडकरी आरक्षण ही उसके लिए प्रभावी औजार साबित हुआ। अगर जहर की काट जहर से हो सकती है तो अमानवीय व परिवर्तनरोधी हिन्दू आरक्षण का काट आंबेडकरी आरक्षण ही है। हिन्दू

आरक्षण के चलते जिन सब पेशों को अपनाने की कल्पना दलितों के लिए दुःसाहसपूर्ण सपना था, आंबेडकरी आरक्षण के चलते वे अब दुर्लभ नहीं रहे। हिन्दू ईश्वर व शास्त्रों द्वारा महज दासत्व के गुणों से भूषित किये गये मानवेत्तर स्वाधीन भारत में राजा, मंत्री, डॉक्टर, इंजीनियर, प्रोफेसर, लेखक आदि बनने लगे। इससे धीरे-धीरे दलितों के मुख्यधारा से जुड़ने व सबलीकरण की प्रक्रिया शुरू हुई।''[15] संविधान में डॉ. आंबेडकर ने दलितों के लिए आरक्षण सुलभ कराने के साथ धारा 340 का जो प्रावधान रखा, उससे परवर्तीकाल में मंडलवादी आरक्षण की शुरूआत हुई, जिससे पिछड़ी जातियों की बेहतरी का रास्ता साफ हुआ।[16]

## आरक्षण के सहारे मूलनिवासियों को मुख्यधारा से जोड़ना : एक वैश्विक परिघटना

संविधान के द्वारा डॉ. आंबेडकर ने आरक्षण के माध्यम से वर्ण-व्यवस्था नामक आर्थिक वितरण व्यवस्था के वंचित मूलनिवासियों को मुख्यधारा से जोड़ने का जो उपक्रम चलाया, वह विश्व की एकमात्र घटना नहीं है। इस विषय में आरक्षण पर गहन शोध करने वाले डॉ. राम समुझ ने लिखा है, 'मूल निवासियों (भारत में अनुसूचित जाति व जनजाति और पिछड़े वर्गों) का शोषण और दमन, विशेष कर महिलाओं का, एक वैश्विक परिघटना रही है। अवश्य ही संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन, ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड जैसे विकसित देशों में शोषण और भेदभाव का तरीका भारत से भिन्न रहा है। बीसवीं सदी की शुरूआत में शिक्षा के प्रसार के चलते शोषित समूहों में अपने अधिकारों के प्रति जागृति आई और पूरी दुनिया में नागरिक अधिकार आंदोलनों की शुरूआत हुई। जागृति महिलाओं में भी आई। उन्होंने विभिन्न तरीकों से अनावश्यक प्रतिबंध और शोषण के खिलाफ प्रतिवाद शुरू किया। ब्रिटिश उपनिवेशवाद के पतन और संसदीय व्यवस्था के विश्वमय सूत्रपात के साथ 'समानता' की एक नई अवधारणा का प्रसार हुआ। नस्ल, रंग, धर्म, जाति और लिंग पर आधारित भेदभाव व दमन एक सामाजिक बुराई के रूप में चिन्हित हुआ। ऐसे में प्रायः सभी सभ्य देश भेदभाव के उन्मूलन व वंचित वर्गों सहित महिलाओं के विकास के लिए तरह-तरह के कानून बनाने की दिशा में अग्रसर हुए।

भारत में 'रिजर्वेशन पॉलिसी' और अमेरिका का 'अफरमेटिव एक्शन प्रोग्राम' समाज के वंचित समूहों की विकास के हित में किये गये प्रयास के बेहतरीन मिसाल हैं। ब्रिटिश सरकार ने भेदभाव के उन्मूलन और नागरिकों के मध्य 'समान अवसर' को बढ़ावा देने के लिए 'सेक्स डिस्क्रिमिनेशन एक्ट' और 'रेस रिलेशन्स एक्ट' पारित किया। इसी तरह आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड ने भी अपने देश के मूलनिवासियों की उन्नति के लिए विशेष कानून एवं विकासमूलक कर्म-सूची बनायी।[17] सिर्फ ये ही नहीं उत्तरी आयरलैण्ड, मलेशिया, दक्षिण अफ्रीका इत्यादि देशों ने भी धरतीपुत्रों के

हित में भारत के आरक्षण जैसा अपने देश की परिस्थितियों के अनुकूल विशेष सार्थक हस्तक्षेप की नीति अपनायी।[18] सार्थक हस्तक्षेप के विशेष कानूनों के चलते विभिन्न देशों के धरतीपुत्र तेजी से राष्ट्र की मुख्यधारा से जुड़ रहे हैं।

## दूसरे देशों की तुलना में : भारत के आरक्षण का दायरा छोटा

बहरहाल भारत में आंबेडकरी आरक्षण से महज सामाजिक परिवर्तन की एक प्रक्रिया ही शुरू हुई, उससे मुक्कमल परिवर्तन नहीं हो सकता था। ऐसा तब होता जब सरकारी क्षेत्र की नौकरियों, संसद व विधानसभाओं में प्रतिनिधित्व के साथ ही राष्ट्र के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में ही हिन्दू आरक्षण के वंचितों को उनका हिस्सा मिलता।[18] दूसरे देशों के विपरीत आरक्षण की यह नीति छोटे से सरकारी क्षेत्र में ही लागू है और विशाल निजी क्षेत्र, जिसमें कृषि, उद्योग तथा सेवा क्षेत्र शामिल हैं—इस नीति के दायरे से बाहर हैं। इस कारण अनुसूचित जाति/जनजाति की कुल आबादी का 90 प्रतिशत जो निजी क्षेत्र से संबद्ध हैं—बाजार तथा गैर-बाजारी तंत्र के सामने निस्सहाय हैं। दूसरे देशों में विभिन्न प्रकार की सार्थक हस्तक्षेप की अलग-अलग नीतियां शुरूआती दिनों से ही सरकारी और निजी क्षेत्र दोनों में लागू हैं।[19] यद्यपि डॉ. आंबेडकर ने 1947 तक निजी क्षेत्र के लिए सार्थक हस्तक्षेप की मांग जारी रखी।[20] लेकिन डॉ. आंबेडकर थे अपने समय के सबसे असहाय स्टेट्समैन। अगर उनके साथ महज उनकी विद्वता न होकर वर्ण-व्यवस्था के संपूर्ण वंचितों की संगठित शक्ति होती, तो वे अवश्य ही सर्वत्र भागीदारी सुलभ कराकर सामाजिक परिवर्तन के आधार को पूर्णता प्रदान कर देते। मगर जिस तरह उनके एकल प्रयास से भारतवर्ष के हजारों साल के इतिहास में पहली बार बदलाव की धारा प्रवाहमान हुई, उसे देखते हुए आंबेडकरोत्तर भारत में उनके अनुसरणकारियों को सर्वाधिक जोर शेष बचे क्षेत्रों में हिस्सेदारी अर्जित करने के लिए लगाना चाहिए था। पर, अफसोस उन्होंने उनके द्वारा सुलभ करायी गयी भागीदारी को ही पर्याप्त मानकर, खुद को सामाजिक जागरूकता के प्रसार में व्यस्त रखा।[21]

## आरक्षण के प्रति ईर्ष्याकातर : शासक वर्ग

बहरहाल दुनिया के अन्यान्य देशों की तुलना में भारत के मूलनिवासियों की बेहतरी की दिशा में लागू आरक्षण का दायरा तो सीमित रहा ही, ऊपर से एक और त्रासदी यह रही कि यहां के शासक व बुद्धिजीवी वर्ग (डॉ. आम्बेडकर की भाषा में ब्राह्मण ही भारत का बुद्धिजीवी वर्ग है)[22] में आरक्षण को लागू करवाने का उत्साह बहुत ही कम रहा। यदि अमेरिकियों से तुलना किया जाय तो स्थिति एकदम शोचनीय नजर आती है। अमेरिका में जब 2 मार्च 1968 को प्रकाशित कर्नर आयोग की सिफारिशों के आधार पर अमेरिकी दलितों को अमेरिका की पूंजी, सरकारी व गैर

सरकारी क्षेत्र की नौकरियों, व्यवसाय, उद्योग, शिक्षण संस्थाओं, मीडिया, फिल्म-टी.वी. इत्यादि में भागीदार बनाने का राष्ट्र के समक्ष आह्वान किया गया, तो राष्ट्र की समृद्धि के लिए शान्ति को ध्यान में रखकर वहां के प्रभुवर्ग ने तहेदिल से उसका स्वागत किया। परवर्तीकाल में डाईवर्सिटी (विविधता) लागू करना अपना राष्ट्रीय कर्तव्य मानते हुए अमेरिकी गोरे समाज ने 'अफरमेटिव एक्शन प्रोग्राम' द्वारा राष्ट्र के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वंचितों को भागीदारी देने का जो सिलसिला शुरू किया, उसके परिणाम आश्चर्यजनक रहे।[23] अमेरिकियों के विपरीत जिन लोगों ने सदियों से भारत के मूलनिवासियों को नर-पशु बनाकर उनका चरम शोषण किया, वे अपनी क्षमता का अधिकाधिक उपयोग, मेरिट का बहाना व तरह-तरह का कानूनी अड़ंगा लगा कर, आरक्षित वर्ग को अवसरों से वंचित करने में करते रहे। यह खुद में एक बड़ा अध्याय है जिस पर अलग से एक किताब लिखी जा सकती है। इस संबंध में बेहतर जानकारी के लिए यह लेखक डॉ. राम समुझ का शोधग्रन्थ 'रिजर्वेशन पॉलिसी : इट्स रेलिवेन्स इन मॉडर्न इंडिया' और बहुजन पब्लिकेशन ट्रस्ट के अध्यक्ष डी.के. खापर्डे द्वारा प्रकाशित 'मंडल आयोग रिपोर्ट' पढ़ने का अनुरोध करता है।

## भारतीय बौद्धिक क्षितिज पर डाइवर्सिटी का उदय

खैर, इधर महज सरकारी नौकरियों और राजनीति में अपना शेयर पाकर आंबेडकर के लोग संतुष्ट हो गये, उधर आंबेडकरोत्तर काल में हिन्दू आरक्षण का सुविधाभोगी वर्ग उद्योग-व्यापार, प्रिन्ट व इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, फिल्म-टी.वी. व विभिन्न संस्थाओं पर प्रायः 80-85 प्रतिशत प्रभुत्व रखते हुए भी महज सरकारी नौकरियों में अपना एकाधिकार टूटने मात्र से आंबेडकरी आरक्षण के प्रति बराबर ईर्ष्याकातर रहा। और जब मंडल के दिनों में पिछड़े भी आरक्षण के दायरे में आ गये, उनके आरक्षण के प्रति आक्रोश ने विस्फोटक रूप ले लिया एवं उसका प्रकटीकरण आत्मदाह व राष्ट्र की संपदा दाह में हुआ। उधर सत्ता पर काबिज सवर्ण राजनीतिज्ञ आरक्षण को समूल ही नष्ट करने की परिकल्पना करने लगे। इस कार्य में अगुआ बने कांग्रेस के ब्राह्मण नेता पी.वी. नरसिंह राव। उन्होंने औरों की तरह मंडल का दृष्टिकटु विरोध करने के बजाए नई वैश्विक अर्थनीति (रणनीति) को सोत्साह वरण कर लिया। लेकिन किसी को भी विश्वास नहीं था कि स्वदेशी के प्रखर हिमायती स्वयंसेवी अटल बिहारी वाजपेयी इस मायने में नरसिंह राव को बौना बनाने की कोशिश करेंगे। लेकिन किया।

पिछली सरकार के स्थिर होते ही अटलजी आरक्षित वर्गों के ध्वंस का अध्याय चटपट पूरा करने में जुट गये। सबसे पहले उन्होंने 31 मार्च, 2003 तक का समय हाथ मे रहते हुए भी 31 मार्च, 2001 को ही 1429 वस्तुओं पर से मात्रात्मक प्रतिबंध हटाने का काम पूरा कर लिया। दूसरे नम्बर पर उन्होंने उस अरुण शौरी को अपनी सरकार में विनिवेश मंत्री बनाने का साहसिक निर्णय लिया जो शौरी 'वर्शिपिंग फाल्स गॉड' के प्रकाशन के बाद आंबेडकरवादियों से मिले अपमान का प्रतिशोध लेने के

लिए मौके की ताक में थे। 2001 में जिन दिनों आरक्षण का आधार खत्म करने के लिए अटल-अरुण की जोड़ी सर्वशक्ति से सार्वजनिक उपक्रमों के विनिवेश की दिशा में आगे बढ़ रही थी, उन्हीं दिनों चन्द्रभान प्रसाद और उनके कुछ साथियों के सौजन्य से भारतीय बौद्धिक क्षितिज पर डाइवर्सिटी का उदय हुआ।[24] बाद में इनके ही उद्योग और मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री दिग्विजय सिंह के सक्रिय सहयोग से 12-13 जनवरी, 2002 को भोपाल कांफ्रेंस अनुष्ठित हुआ और इस कांफ्रेंस से इक्कीसवीं सदी की चुनौतियों से निबटने व सामाजिक परिवर्तन की धारा को तीव्रतर करने के उद्देश्य से 21 सूत्रीय दलित एजेंडा जारी हुआ, जिसे भोपाल घोषणापत्र भी कहते हैं। भोपाल घोषणा पर देश भर से आये विशिष्ट दलित बुद्धिजीवियों ने अपने समर्थन की मोहर लगायी थी। कई हजार वर्ष पूर्व वैदिक मनीषियों ने वर्ण-व्यवस्था के सूत्रों द्वारा शूद्रातिशूद्रों को वितरणहीनता की खाई में धकेलने का जो जघन्य कार्य किया था, उसी का मुक्कमल प्रतिकार था भोपाल घोषणापत्र।[25]

## भोपाल घोषणा का असर

यूं तो भोपाल घोषणा के 21 सूत्रीय एजेंडे में अस्पृश्य-आदिवासियों के लिए जंगल-जमीन पर अधिकार, आसानी से हथियार व वित्तीय सुविधाएं सहज सुलभ कराने की तो मांग की ही गई थी, परन्तु उसका केंद्रीय तत्व 'अफरमेटिव एक्शन' के द्वारा रूपायित होने वाली वह 'डाइवर्सिटी' नीति थी जिसके तहत अमेरिकी दलितों (अफ्रीकन अमेरिकन, रेड इंडियंस, हिस्पैनिक्स) को वहां सरकारी/गैर सरकारी नौकरियों के साथ, वस्तुओं की सप्लाई, तैयार उत्पादों के डीलरशीप, ठेकों, फिल्म-टी.वी., प्रिन्ट व इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, ज्ञान के केन्द्रों इत्यादि में भागेदारी दी जा रही है। वास्तव में जाति व्यवस्थाधारित भारतवर्ष के ज्ञात इतिहास में अस्पृश्य-आदिवासियों को धनबल से समृद्ध करने वाले सर्वाधिक प्रभावशाली सूत्रों से लैस था डाइवर्सिटी आधारित भोपाल घोषणापत्र।[26] भोपाल घोषणा के 21 सूत्रीय एजेंडे में शामिल डाइवर्सिटी की प्रभावकारिता से प्रभावित होकर तत्कालीन राष्ट्रपति के.आर. नारायणन ने 25 जनवरी, 2002 की शाम राष्ट्र के नाम अपने संबोधन में भोपाल घोषणा को अपनाने की अपील राष्ट्र के समक्ष कर डाली। परवर्तीकाल में भोपाल घोषणा में शामिल डाइवर्सिटी से प्रेरित होकर पुअर क्रिश्चियन दलित लिबरेशन मूवमेंट ने चर्च की संपदा में शेयर मांगते हुए 19 जून, 2002 को नई दिल्ली घोषणापत्र जारी किया। इसी से प्रेरित होकर बंगलोर में 19-20 अप्रैल, 2003 को 'बंगलोर पहल' जारी हुआ, जिसमें मांग उठी—1. सरकार अपने प्रयोजन के लिए की जाने वाली खरीदारी, भवन और सड़क निर्माण के ठेकों सहित शराब की दुकानों के लाइसेंस व सरकारी डीलरशिप में अनु.जाति/जनजाति और दस्तकार पिछड़ी जातियों के लिए अनिवार्य रूप से सप्लायर/कांट्रैक्ट डाइवर्सिटी लागू करे; 2. सभी औद्योगिक कंपनियां जो सार्वजनिक संस्थाओं से ऋण लेती एवं राज्य प्रदत्त सुविधाओं का भोग करती हैं,

अपनी संस्थाओं में अवश्य ही सप्लायर/डीलरशिप/रिक्रूटमेंट डाइवर्सिटी लागू करें 3. प्रिन्ट एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया एवं फिल्म व संगीत उद्योग अनिवार्य रूप से अमेरिका की तरह डाइवर्सिटी लागू करे और 4. निजी क्षेत्र के स्कूल/कॉलेज भी एडमिशन और रिक्रूटमेंट डाइवर्सिटी लागू करे। भोपाल घोषणा का असर सम्भवतः राजग सरकार द्वारा गठित संविधान समीक्षा आयोग पर भी पड़ा। इसीलिए आयोग ने अपनी संस्तुतियों में सरकारी दुकानों, पेट्रोल पंप, गैस एजेंसी और सरकारी ठेकों में पिछड़े तबकों के लिए आरक्षण देने की बात की है।

## बड़ा आकार लेता डाइवर्सिटी आंदोलन

21वीं सदी में मूल निवासियों (शूद्रातिशूद्र व इनसे धर्मान्तरित अल्पसंख्यकों) को भू-मंडलीकरण की आंधी में तिनकों की तरह उड़ने से बचाने में सक्षम[27] डाइवर्सिटी के लिए आने वाले दिनों में विराटतम आंदोलन संगठित होने जा रहा है। भोपाल घोषणा जारी होने के कुछ अन्तराल के मध्य ही डाइवर्सिटी लागू करने के लिए संसद में आवाज गूंजने के साथ ही कई शहरों में 'डाइवर्सिटी एक्शन कमेटियां' गठित हुईं, जो आज भी डाइवर्सिटी अभियान में जुटी हुई हैं। भोपाल घोषणा के बाद से दलित नेता रह-रहकर डाइवर्सिटी का मुद्दा उठाते रहे हैं। इनमें बी.एस.-4 के राष्ट्रीय अध्यक्ष मा. आर.के. चौधरी तो 'अमेरिका के डाइवर्सिटी पैटर्न पर निजी क्षेत्र में आरक्षण' को ही अपने पार्टी का एक सूत्रीय एजेंडा बनाकर लगातार प्रचाराभियान में जुटे हुए हैं। जस्टिस पार्टी के उदित राज भी इस मामले में पीछे नहीं हैं। उन्होंने पिछले दिनों एक शिष्टमंडल के साथ अमेरिका पहुंचकर इस मुद्दे पर अमेरिकी सरकार का ध्यान खींचने का प्रयास किया है। इसके लिए अभियान चलाने हेतु विभिन्न अंचलों में लोग संगठित हो रहे हैं। आने वाले दिनों में उदारीकरण, निजीकरण के चलते आरक्षण के खात्मे की आशंका से जो ढेरों संगठन व कई राजनीतिक पार्टियां निजी क्षेत्र में आरक्षण के लिए आंदोलन चला रही हैं, उन्हें भी डाइवर्सिटी आंदोलन से जुड़ना ही है। ऐसे संगठनों व पार्टियों को सम्भवतः डाइवर्सिटी की अवधारणा की जानकारी नहीं है। जिस दिन उन्हें पता चल जायेगा कि डाइवर्सिटी की मांग के समक्ष निजी क्षेत्र में आरक्षण (नौकरियों में) की मांग डाइवर्सिटी के समक्ष लिलिपुट[28] जैसी है, वे डाइवर्सिटी आंदोलन के साथ जुड़ने के लिए अवश्य ही बाध्य होंगे।

## सही दिशा में जा रहे हैं डाइवर्सिटी आंदोलनकारी

भूमंडलीकरण, निजीकरण और उदारीकरण के सैलाब में मूल निवासियों को तिनके की भांति बहने से बचाने; सदियों से वितरणवादी वर्ण-व्यवस्था में संपदा-संसाधनों के वितरण में हुई गड़बड़ियों को संशोधित करने; भारत में व्याप्त आर्थिक असमानता की भयावह खाई को पाटने और इक्कीसवीं सदी में स्तब्ध होती सामाजिक परिवर्तन की धारा को तीव्रतर करने के महती उद्देश्य से जिन लोगों ने डाइवर्सिटी अभियान

में खुद को झोंक दिया है, वे सही दिशा में जा रहे हैं। इसके प्रति वे अब और आश्वस्त हो सकते हैं। डाइवर्सिटी आंदोलनकारियों को आश्वस्त करने वाली डॉ. राम समुझ की एक किताब है, जिसको प्रकाशित किया है समृद्ध भारत पब्लिकेशन, मुबई ने। यह विधि लेखक का शोध ग्रन्थ है जिसमें भारत से लेकर अमेरिका, ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड इत्यादि देशों के उन कानूनों का तुलनात्मक अध्ययन है जिसे विभिन्न देशों ने रंग, धर्म, जाति और लिंग और आधार पर वंचना का शिकार हुई आबादी के हित में प्रवर्तित किया है। लेकिन भारत के जाति समाज के निहायत ही वंचित तबके का सदस्य होने के नाते लेखक ने भारत की रिजर्वेशन पॉलिसी पर ज्यादा आलोकपात किया है।

## भूमंडलीकरण के दौर में अप्रासंगिक होती आरक्षण नीति

इस पुस्तक के लेखकीय की शुरूआत में ही इस बात को लेखक ने कबूल किया है कि अनु.जाति/जनजाति समाजों में जो भी विकास परिलक्षित हो रहा है वह सेवा क्षेत्र और विधायिका में आरक्षण के फलस्वरूप ही नजर आ रहा है। लेखक कबीर के इस दोहे—'तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आंखिन की देखी'—को उद्धृत करते इस बात को दावे के साथ कहता है कि उसने दुनिया में घूम-घूम कर वंचनाओं से निजात दिलाने वाले कानूनों का अध्ययन करने के बाद अपना अनुभव ही प्रस्तुत पुस्तक में लिपिबद्ध किया है। उसका मानना है, 'आरक्षण की नीति आज के उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण के समक्ष पुरानी पड़कर अपनी प्रासंगिकता खो चुकी है। विगत 15 वर्षों में सरकारी क्षेत्र की नौकरियों में तेजी से गिरावट आई है। अतः नई वैश्विक अर्थनीति के अनुरूप आरक्षण नीति की समीक्षा और इसके ढांचे के आधुनिकीकरण की जरूरत है।[29] वह खेद के साथ कहता है—'आरक्षित वर्ग के लोग आरक्षण विशेषकर सेवा क्षेत्र के आरक्षण पर लगभग पूरी तरह निर्भर हो गये हैं। व्यवसाय, वाणिज्य, उद्योग, प्रोफेशन इत्यादि कई क्षेत्र हैं जो इनके स्पर्श से बाहर हैं। प्रिन्ट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में इनका प्रतिनिधित्व प्रायः शून्य है।[30] ऐसे में इन अछूते क्षेत्रों में जगह बनाने के लिए यह आरक्षित वर्गों को संत कबीर की इन पंक्तियों—'जिन ढूढ़ा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ, हौ बौरी बूढ़ब बुड़न परी रही किनारे बैठि' से प्रेरणा लेने की बात करता है। आरक्षित वर्गों को यही सब बातें तो डाइवर्सिटी आंदोलनकारी सुनाते रहे हैं जो डॉ. राम समुझ के अध्ययन में उभरकर आई हैं। लेकिन डाइवर्सिटी वालों का हौंसला अफजाई करने वाली असल बातें तो लेखक के अध्ययन के अगले अंशों में उभर कर सामने आती हैं।

## डाइवर्सिटी की जड़ें आंबेडकरवाद में

अफरमेटिव एक्शन द्वारा अमेरिका में साकार किये जा रहे 'डाइवर्सिटी' सिद्धान्त के भारतीय बौद्धिक क्षितिज पर निरन्तर विस्तार लाभ करने के साथ ही कुछ लोग इस

अभियान को हतोत्साहित करने के लिए यह अपप्रचार करते रहे हैं कि यह उस अमेरिकी राज्य का आइडिया है जहां नस्लभेद कायम है। जबकि डाइवर्सिटी समर्थक यह बात समझाते रहे हैं कि डाइवर्सिटी की जड़ें ठीक उसी तरह आंबेडकरवाद में निहित हैं जैसे विश्व के अन्यान्य देशों में विकसित बुद्धिज्म की जड़ें भारत में हैं। इस मामले में डॉ. समुझ का शोध डाइवर्सिटी समर्थकों की युक्ति पर समर्थन की मोहर लगाता है। वे इसकी जड़ों को आंबेडकरवाद से जोड़ते हुए लिखते हैं, 'आंबेडकर ने पिछड़े वर्गों की बेहतरी के लिए विभिन्न किस्म के आंदोलन चलाये जिसका अनुसरण करते हुए मार्टिन लूथर किंग (जू.) ने 1950 के दौर में 'सिविल राइट्स मूवमेंट' के नाम से आंदोलन चलाया। वैसे आंदोलन संगठित रूप में दूसरे देशों में शुरू हुए। सिविल राइट्स मूवमेंट के परिणामस्वरूप अमेरिकी सरकार ने भारत के आरक्षण नीति के पैटर्न पर अफरमेटिव एक्शन प्रोग्राम शुरू किया।'[31] विभिन्न देशों की आरक्षण प्रणालियों का गहन अध्ययन करने वाले मार्क गलान्टर के अनुसार, 'अमेरिकी सरकार ने अफरमेटिव एक्शन प्रोग्राम (A.A.P) का विचार भारत की आरक्षण नीति से उधार लिया है।'[32] यहां अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए लेखक कहता है, 'जहां तक A.A.P. का संबंध है, अब आइडिया को उधार लेना वाला, उधार देने वाले से बेहतर हो गया है। इसकी उपमा देते हुए वह कहता है, 'गुरु गुड़ रह गये, चेला शक्कर हो गये।'[33] A.A.P नामक शक्कर के समक्ष गुड़ साबित होने वाले 'आरक्षण' नामक गुरु की सीमाबद्धता को दृष्टिगत रखकर लेखक इस पुस्तक में कई जगह याद दिलाता है कि आरक्षण से सबक लेते हुए ही अमेरिकी सरकार ने अफरमेटिव एक्शन की राह पर चलने का फैसला किया। पुनः स्मरण करा दूं कि अमेरिका की जिस डाइवर्सिटी नीति को भारत में लागू करवाने के लिए हम प्रयासरत हैं, वह वहां अफरमेटिव एक्शन प्रोग्राम (A.A.P.) के माध्यम से ही क्रियान्वित होती है।

ए.ए.पी. से प्रभावित लेखक पुस्तक के अंतिम अध्याय में सुझाव देते हुए कहता है, 'ए.ए.पी. ने अमेरिकी दलितों (अफ्रीकन, अमेरिकन और नेटिव अमेरिकन) के आर्थिक विकास में अपनी सफलता को प्रमाणित कर दिया है जबकि भारत की आरक्षण नीति में अनु.जाति/जनजाति और ओ.बी.सी. के आर्थिक विकास का कोई प्रावधान नहीं है। नौकरियों, संसद व विधान सभाओं में आरक्षण के जो नियम हैं, उससे व्यक्ति विशेष तो लाभान्वित हो सकता है, पर पूरा समुदाय नहीं। ऐसे में ए.ए.पी. से कुछ अच्छी बातें उधार लेकर आरक्षण पद्धति को और उपयोगी व प्रभावकारी बनाया जा सकता है।'[34] डाइवर्सिटी समर्थक भी तो इसीलिए आंदोलन चला रहे हैं ताकि भारत की आरक्षण प्रणाली का विकसित रूप डाइवर्सिटी लागू करवा कर वर्ण-व्यवस्था के सदियों के वंचित मानव समूहों का आर्थिक उत्थान और आंबेडकरवाद का विस्तार किया जा सके।

## संदर्भ


1. एच. एल. दुसाध, सामाजिक परिवर्तन और बी.एस.पी. पृ-13
2. एच.एल. दुसाध, डाइवर्सिटी : दलित सशक्तीकरण का सर्वोत्तम औजार, पृ-9
3. एच.एल. दुसाध, वर्ण-व्यवस्था : एक वितरण-व्यवस्था, पृ-213
4. महात्मा गांधी, हरिजन, अंक 18 जुलाई, 1936
5. एच.एल. दुसाध, हिन्दू साम्राज्यवाद के वंचितों की मुक्ति का घोषणापत्र : डाइवर्सिटी (मार्क्सवादियों से एक संवाद), पृ-27
6. एच.एल. दुसाध, हिन्दू आरक्षण और बहुजन संघर्ष, पृ-257
7. पं. जवाहरलाल नेहरू, दलित जनउभार के पृ-38 पर प्रकाशित आलेख, समन्वय और समझौता
8. राकेश पांडेय, सामाजिक परिवर्तन में बाधक : हिन्दुत्व, पृ-5
9. एच.एल. दुसाध, वही-पृ-382
10. एच.एल. दुसाध, सामाजिक परिवर्तन और बी.एस.पी., पृ-15
11. एच.एल. दुसाध, सामाजिक परिवर्तन में बाधक : हिन्दुत्व, पृ-601
12. एच.एल. दुसाध, डाइवर्सिटी : दलित सशक्तीकरण का सर्वोत्तम औजार, पृ-13
13. शरद यादव, महात्मा फुले : साहित्य और विचार, पृ-227
14. एच.एल. दुसाध, सामाजिक परिवर्तन और बी.एस.पी., पृ-228
15. एच.एल. दुसाध, डाइवर्सिटी : दलित सशक्तीकरण का सर्वोत्तम औजार, पृ-13
16. एच.एल. दुसाध, सामाजिक परिवर्तन और बी.एस.पी. पृ-229
17. डॉ. राम समुझ, रिजर्वेशन पॉलिसी : इट्स रेलीवेन्स इन मार्डर्न इंडिया, पृ-197
18. डॉ. सुखदेव थोराट, निजी क्षेत्र में आरक्षण नीति, पृ-19
19. एक्शन एड (2004), अनटचेबलिटी इन रूरल इंडिया, एक्शन एड., दिल्ली
20. डॉ. सुखदेव थोराट, निजी क्षेत्र में आरक्षण नीति, पृ-30
21. एच.एल. दुसाध, वर्ण-व्यवस्था : एक वितरण-व्यवस्था, पृ-157
22. डॉ. आंबेडकर, बाबा साहेब डॉ आम्बेडकर, संपूर्ण वाग्मय, खण्ड-1, पृ-95
23. एच.एल. दुसाध, डाइवर्सिटी : दलित सशक्तीकरण का सर्वोत्तम औजार, पृ-67
24. वही, पृ-14-15
25. वही, पृ-74
26. एच.एल. दुसाध, हिन्दू साम्राज्यवाद के वंचितों की मुक्ति का घोषणा पत्र : डाइवर्सिटी (मार्क्सवादियों से एक संवाद), पृ-60
27. एच.एल. दुसाध, डाइवर्सिटी : दलित सशक्तीकरण का सर्वोत्तम औजार, पृ-202
28. एच.एल. दुसाध, मुस्लिम मुख्यमंत्री नहीं : डाइवर्सिटी, (रामविलास पासवान से एक संवाद), पृ-19
29. डॉ. राम समुझ, रिजर्वेशन पॉलिसी : इट्स रेलीवेन्स इन मार्डन इंडिया, पृ-34
30. वही, पृ-34
31. वही, पृ-14
32. वही, पृ-391
33. वही, पृ-391
34. वही, पृ-391


❑

# सौ रोगों की एक दवा : डाइवर्सिटी

हम इक्कीसवीं सदी में वास कर रहे हैं, जहां मानव सभ्यता अपने चरमोत्कर्ष पर नजर आ रही है। इस समय हम जहां अंतरिक्ष में बस्तियां बसाने की परिकल्पना में मशगूल हैं, वहीं हम दुनिया की दूरी मिटा विश्व-ग्राम की परिकल्पना को मूर्त रूप दे रहे हैं। हमने प्रकृति की प्रतिकूलता पर जय पाने के साथ ही तरह-तरह की बीमारियों पर भी काबू पा लिया है। किन्तु तमाम तरह की उपलब्धियों के बावजूद दावा नहीं किया जा सकता कि मानव-जाति पूरी तरह से समस्यामुक्त हो चुकी है। हम कई तरह के संकटों से जूझ रहे हैं जिसके लिए खासतौर से जिम्मेवार है मानव जाति में विविधताओं को सम्मान देने के पर्याप्त सद्‌गुणों का अभाव।

## सभ्यताओं का टकराव : धार्मिक व सांस्कृतिक विविधताओं में व्याप्त शत्रुता का परिणाम

सैमुएल पी. हंटिंगटन ने 1992 में 'अमेरिकन इंटरप्राईज इंस्टिट्यूट' में पहली बार व्यक्त किये गए अपने विचार को विस्तार देते हुए जब 1996 में 'द क्लैश ऑफ सिविलाइजेशन एंड रिमेकिंग ऑफ वर्ल्ड वार' नामक पुस्तक निकाली तो दुनिया एक नए आसन्न संकट से सकते में आ गयी। उन्होंने उस पुस्तक में दावा किया कि विचारधाराओं के युग का अवसान हो चुका है। ऐसे में भावी विश्व-युद्ध का बुनियादी कारण विचारधारा और आर्थिक नहीं, सांस्कृतिक और धार्मिक पहचान होगी। सांस्कृतिक साम्यता वाले राष्ट्र अपना-अपना समूह बना कर विरुद्ध पहचान वाले राष्ट्रों से युद्ध करेंगे। हालांकि उनकी उस थीसिस को दुनिया के जाने-माने कई चिंतकों, जिनमें अमर्त्य सेन भी हैं, ने नकार दिया था, बावजूद इसके सभ्यताओं के टकराव का भय हमारे मन के किसी कोने में बैठ गया है तो उसके पीछे कुछ कारण हैं जो इतिहास और सामाजिक मनोविज्ञान के पन्नों में दर्ज हैं।

प्रत्येक संस्कृति का एक मानदंड होता है जिसके अनुपालन के फलस्वरूप व्यक्ति अन्य नृजातीय समूहों के प्रति पूर्वाग्रह विकसित कर लेता है। समाज विज्ञानियों ने इसका खुलासा करते हुए कहा है कि 'प्रत्येक संस्कृति अपनी नई पीढ़ी को अन्य समूहों के प्रति कुछ विश्वासों, स्थिराकृतियों तथा मनोवृत्तियों एवं आचरणों को अपनाने की शिक्षा देती है। इस प्रकार पूर्वाग्रह और कुछ नहीं अपितु सांस्कृतिक विरासत तथा लोकाचार का एक अंश है।' सांस्कृतिक विरासत तथा लोकाचार से पनपा

पूर्वाग्रह व्यक्ति व समूहों में दूसरे धर्मों और संस्कृतियों के प्रति कभी-कभी शत्रुता की हद तक अनादर का भाव पैदा कर देता है। धार्मिक व सांस्कृतिक विविधता में व्याप्त इस शत्रुता के कारण ही दुनिया में बेहिसाब खून बहा। इस कारण ही दुनिया के कई देशों से कई धर्म विलुप्त हो गए। अगर डॉ आंबेडकर के अनुसार भारत का इतिहास हिंदू और बौद्ध धर्म के संघर्ष का इतिहास है तो उसके पीछे धार्मिक विविधता में व्याप्त शत्रुता ही है। धार्मिक विविधता में व्याप्त शत्रुता मानवता के लिए कितनी घातक हो सकती है इसका बड़ा प्रमाण 1095 में येरुशलम की भूमि पर इस्लाम और ईसाईयत के मध्य अनुष्ठित धर्मयुद्ध (Crusade) है। 'काफिरों' के हाथों से 'पवित्र भूमि' के उद्धार के जूनून में डेढ़ सौ सालों से ज्यादा चले उस धर्मयुद्ध में जो खून बहा उसका वर्णन इतिहास के पन्नों में पढ़कर रूह कांप जाती है। सदियों से धार्मिक विविधता में व्याप्त इस शत्रुता के खात्मे का साधु-संतों और समाज सुधारकों द्वारा काफी प्रयास भी हुए, पर अपेक्षित परिणाम अब तक भी सामने नहीं आया है। सांस्कृतिक विरासत और लोकाचार से उपजी इस शत्रुता के कारण भारत सहित विश्व के अन्यान्य देशों में रह-रहकर सांप्रदायिक दंगों का सैलाब पैदा होता रहता है। बहरहाल साम्प्रदायिकता तथा कट्टरता को देश के एकीकरण तथा एकता एवं एक समान, न्यायपूर्ण लोकतांत्रिक समाज के मार्ग में बाधक मानते हुए दुनिया के असंख्य लेखक, समाजसेवी इत्यादि जो इसके खिलाफ अनवरत अभियान चलाये जा रहे हैं, उससे हम हंटिंगटन की भविष्यवाणी के विफल होने के प्रति काफी हद तक आश्वस्त हो सकते हैं। किन्तु वैज्ञानिक पर्यावरण को लेकर जिन खतरों के प्रति आगाह कर रहे हैं उससे उबरने प्रति आश्वस्त होना कठिन लग रहा है।

### ग्लोबल वार्मिंग : मानव-जाति के समक्ष नई चुनौती

पर्यावरण वैज्ञानिकों द्वारा जलवायु परिवर्तनजनित समस्याओं से आगाह किये जाने के बाद अगर पृथ्वीवासी किसी चीज को लेकर सबसे अधिक चिंतित हैं तो वह है ग्लोबल वार्मिंग। इस बात का इल्म हर किसी को हो चुका है कि इसके कारण बर्फ की चोटियां पिघलने लगेंगी जिससे समुद्र का जलस्तर बढ़ जाएगा और तटीय शहर जलमग्न हो जाएंगे। पर 'ग्लोबल वार्मिंग' का दुष्परिणाम यहीं तक सीमित नहीं है। इससे वर्षा ऋतु में बदलाव आएगा, जिससे कृषि प्रभावित होगी तथा बाढ़ व भूस्खलन के परिणामस्वरूप लोगों का स्थान्तरण होगा जो आवास समस्या पर प्रतिकूल असर डालेगा। इसके द्वारा तापमान में वृद्धि से असंख्य जीव विलुप्त हो जायेंगे। किन्तु अन्धाधुन औद्योगीकरण की होड़ में हमने प्राकृतिक संसाधनों का जो निर्मम दोहन किया उसके फलस्वरूप वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, मृदा प्रदूषण जैसी और कई समस्याओं को जन्म देने के साथ ही जैव-विविधता पर विराट संकट

खड़ा हो गया है।

## पर्यावरण और संपोषित विकास

1980 के शेष वर्षों में जब दुनिया भर के वैज्ञानिकों में यह यकीन पुख्ता हो गया कि विकास के नाम पर जो मानव क्रियाएं हो रही हैं, उससे वैश्विक स्तर पर 'जलवायु परिवर्तन' और 'वैश्विक ताप' अर्थात् 'ग्लोबल वार्मिंग' के खतरे बढ़ेंगे, तब अंतर्राष्ट्रीय समुदाय में संपोषित विकास (Sustainable Development ) की अवधारणा का जन्म हुआ। संपोषित विकास का अवधारणा के रूप में विकास सबसे पहले 1957 में ब्रंटलैंड रिपोर्ट के प्रकाशन के साथ हुआ। इसमें कहा गया था, 'संपोषित विकास सामंजस्य में स्थायित्व लाना नहीं है, अपितु यह एक नए परिवर्तन की प्रक्रिया है जिसमें संसाधनों का दोहन, निवेश की दिशा, तकनीकी विकास की स्थिति तथा संस्थात्मक परिवर्तनों को वर्तमान के साथ-साथ भावी समय की आवश्यकताओं के भी अनुकूल बनाया जा सके।' जब अंधाधुन विकास के चलते पर्यावरण की स्थिति बिगड़ी उस पर सुझाव देते हुए उसमें कहा गया था, 'विकास तो हो पर संसाधनों अथवा पर्यावरण को क्षति पहुंचाए तथा लोगों एवं विश्व के भविष्य को खतरे में डाले बिना।'

## पर्यावरण की रक्षा के लिए लामबंद हुआ अंतर्राष्ट्रीय जगत

ब्रंटलैंड रिपोर्ट के प्रकाशित होने के पांच वर्ष बाद 1992 में ब्राजील के रियो- द- जेनरो में पर्यावरण संरक्षण तथा सामाजिक-आर्थिक विकास से सम्बंधित मुद्दे पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्मलेन, जिसे 'पृथ्वी सम्मलेन' भी कहा जाता है हुआ, जिसमें 150 के करीब सरकारों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया एवं जिसमें 'जलवायु परिवर्तन सम्बन्धी संस्थागत समझौते' तथा 'जैविक विविधता संबंधी समझौते' पर हस्ताक्षर हुए। फिर तो विकास और पर्यावरण के मुद्दे पर ऐसे सम्मेलनों का सिलसिला ही शुरू हो गया जो आज भी जारी है एवं जिनका एक ही उद्देश्य है-विश्व का पोषणकारी विकास, जो सिर्फ पर्यावरण संरक्षण से ही संभव है।

इन सम्मेलनों में अब तक पर्यावरण सरक्षण के लिए जल-मृदा-ध्वनि और औद्योगिक प्रदूषण पर नियंत्रण के साथ ज्यादा जोर जैव-विविधता की रक्षा की कार्ययोजना पर रहा है।

## जैविक विविधता (Bio-diversity) पर खास चिंता

1992 के रियो सम्मलेन के बाद से ही विश्व-भर में पौधों और पशुओं की असंख्य प्रजातिओं को बचाने की चिंता शुरू हुई। कारण, लोगों ने महसूस करना शुरू किया कि मनुष्य के लिए जीव विभिन्नता बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि हम इसके द्वारा निर्मित अन्य वनस्पति तथा पशुओं की प्रजातियों पर निर्भर हैं। इनसे ऑक्सीजन का निर्माण, कार्बन-डाई-आक्साइड की मात्रा को कम करना, जलचक्र का नियमन

तथा मृदा संरक्षण जैसी पर्यावरणिक सेवाएं भी मिलती हैं। भोजन, औषधियों तथा सभी प्राकृतिक उत्पादों का जीव मंडल में विद्यमान विभिन्न प्रजातियों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सम्बन्ध है। आदिवासी समुदाय का जीवन तो मुख्य रूप से प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर है। शहरी लोग भी प्रकृति से प्राप्त उत्पादों का प्रयोग अप्रत्यक्ष रूप से करते हैं। पर मानव विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली जैव-विविधता को मनुष्य ही क्षति पहुंचाए जा रहा है और क्षति पहुंचाने का यह सिलसिला कायम रहा तो 2050 तक 10 करोड़ प्रजातियां विलुप्त हो जाएंगी। विभिन्न प्रजातियों की विलुप्ति के भयावह सिलसिले को ध्यान में रखते हुए रियो सम्मेलन से जैव-विविधता की रक्षा के लिए तरह-तरह के कानून बनाने से लेकर जागरूकता फैलाने का जो क्रम शुरू हुआ वह आज एक आन्दोलन का रूप ले चुका है, जिससे भारत भी अछूता नहीं है।

## जैविक विविधता के लिए घातक : हिंदू धर्म-संस्कृति

बेशक आज भारत भी जैव-विविधता की रक्षा में बढ़-चढ़कर योगदान कर रहा है, पर हिंदू धर्म-संस्कृति सदियों से इस पर कहर बरपाती रही है, जो आज भी जारी है। प्राचीन भारत में वैदिक आर्य यज्ञ के नाम पर अंधाधुन पशुबलि करते रहे जिसके खिलाफ गौतम बुद्ध को अहिंसा का आन्दोलन चलाना पड़ा। अगर बुद्ध वह आन्दोलन नहीं चलाये होते तो अब तक यज्ञ की बलि-वेदी पर ही असंख्य प्रकार के पशु-पक्षी और पेड़-पौधे स्वाहा हो गए होते। किन्तु बलि-प्रथा से विरत होने के बावजूद हिंदुओं द्वारा शवदाह जारी रहा और इस प्रक्रिया में पेड़-पौधों की क्षति होती रही। यही नहीं वे सदियों से कुष्ठ रोग व अन्य कई बीमारियों से मरने वाले इंसानों और पशुओं को नदी-नालों में प्रवाहित करते रहे हैं। औद्योगिक क्रांति के पूर्व पर्यावरण को सर्वाधिक क्षति हिंदू धर्म-संस्कृति के अभिन्न अंग शवदाह और शव-प्रवाह प्रथा से हुई। यह सिलसिला आज भी कायम है। राहत की बात है कि विद्युत शवदाह धीरे-धीरे चलन में आ रहा है।

## भारत में जैव-विविधता का संकट

बहरहाल आकड़ों के अनुसार, भारत विश्व का 12वां सबसे बड़ा जैविक विविधता संपन्न देश है। यहां 45,000 जंगली तथा 77,000 जंगली जानवरों की प्रजातियां हैं, जो मात्रा में विश्व का 6.5 प्रतिशत है। पर्यावरण विज्ञानियों के अनुमान के मुताबिक पिछले कुछ दशकों में भारत में लगभग 50 प्रतिशत वन काटे जा चुके हैं, 75 प्रतिशत जल के स्रोत दूषित हो चुके हैं एवं घास-भूमि तथा समुद्र तटों का ह्रास हो चुका है। इसके अतिरिक्त शिकार, कीटनाशकों द्वारा विषाक्तिकरण तथा अन्य मानव क्रियाओं के कारण जैव-विविधता को काफी क्षति पहुंची है। किन्तु भारत में पर्यावरणिक सिस्टम को बनाये रखने, हजारों-करोड़ों लोगों जैसे-कृषक,

मछुआरों आदि की आजीविका को आधार प्रदान करने, औषधि व स्वास्थ्य सेवा संस्थानों को कच्चा माल सुलभ कराने तथा वैज्ञानिक, औद्योगिक व दूसरे क्षेत्रों में अनुसन्धान चलाने के लिए जैविक विविधता का बने रहना परमावश्यक है। भारी राहत की बात है कि लंबे समय तक जैव-विविधता की व्यापक व महत्वपूर्ण भूमिका की अनदेखी करने वाले भारत के योजनाकारों और समाजसेवियों ने अंततः कला-फैशन-साहित्य, फिल्म-टीवी, ज्ञान-विज्ञान की भांति ही पश्चिम से पर्यावरण सुरक्षा की सीख लेकर जैविक विविधता को बचाने की मुहिम छेड़ दी है। यही कारण है जहां सरकारें पर्यावरण मंत्रालय बनाकर तरह-तरह की योजनाओं पर काम कर रही हैं, वहीं अनगिनत गैर-सरकारी संगठन वृक्षारोपन करने व जनजागृति फैलाने के साथ सरकारी और गैर-सरकारी क्षेत्रों की उन परियोजनाओं के खिलाफ जनांदोलन चला रहे हैं, जो पर्यावरण और जैव-विविधता के लिए क्षतिकर हैं। सरकारी और गैर-सरकारी क्षेत्र के ये प्रयास आश्वस्त करते हैं कि हम देश में पर्यावरणिक खतरे को सुदीर्घ काल तक टालने में सफल रहेंगे।

## मानव-जाति की सबसे बड़ी समस्या : आर्थिक और सामाजिक गैर-बराबरी

बहरहाल हंटिंगटनपंथी सभ्यताओं के टकराव की जितनी भी भयावह तस्वीर पेश करें और पर्यावरणवादी ग्लोबल वार्मिंग की तबाही का जितना भी डरावना का खाका खींचे, ये मानव जाति की सबसे बड़ी समस्या के रूप में चिन्हित नहीं हो सकतीं। हजारों सालों से लेकर आज तक निर्विवाद रूप से 'आर्थिक और सामाजिक गैर-बराबरी' ही मानव जाति की समस्या रही है। यही वह सबसे बड़ी समस्या है जिससे मानव-जाति को निजात दिलाने के लिए ई. पू. काल में भारत में गौतम बुद्ध, चीन में मो-ती, इरान में मज्दक, तिब्बत में मुने-चुने पांय; रेनेसां उत्तरकाल में पश्चिम में हॉब्स-लाक, रूसो, वाल्टेयर, टॉमस स्पेन्स, विलियम गाडविन, सेंट साइमन, फुरिये, प्रूधो, चार्ल्स हॉल, रॉबर्ट आवेन, अब्राहम लिंकन, मार्क्स, लेनिन तथा एशिया में माओत्से तुंग, हो ची मिन्ह, फुले, शाहूजी महाराज, पेरियार, डॉ. आंबेडकर, लोहिया, कांशीराम इत्यादि जैसे ढेरों महामानवों का उदय तथा भूरि-भूरि साहित्य का सृजन हुआ एवं लाखों-करोड़ों लोगों ने प्राण बलिदान किये। इसे लेकर ही आज भी दुनिया के विभिन्न कोनों में छोटा-बड़ा आन्दोलन/संघर्ष जारी है।

## आर्थिक और सामाजिक विषमता की सृष्टि का कारण : शक्ति के स्रोतों में सामाजिक और लैंगिक विविधता का असमान प्रतिबिम्बन

बहरहाल पूरी दुनिया में आर्थिक और सामाजिक विषमता की उत्पत्ति समाज में शक्ति के स्रोतों का विभिन्न सामाजिक समूहों और उनकी महिलाओं के मध्य असमान बंटवारे से होती रही है। ध्यान देने की बात है कि सदियों से ही समाज जाति, नस्ल, लिंग, भाषा इत्यादि के आधार पर कई समूहों में बंटा रहा है : मार्क्सवादियों

के अनुसार सिर्फ अमीर-गरीब में नहीं। जहां तक शक्ति का सवाल है, सदियों से समाज में इसके चार प्रमुख स्रोत रहे हैं-आर्थिक, राजनीतिक शैक्षिक और धार्मिक। शक्ति के ये स्रोत जिस समूह के हाथों में जितना ही संकेंद्रित रहे, वह उतना ही शक्तिशाली, विपरीत इसके जो जितना ही इनसे दूर व वंचित रहा, वह उतना दुर्बल व अशक्त रहा। सदियों से समतामूलक समाज निर्माण के लिए जारी संघर्ष और कुछ नहीं, शक्ति के स्रोतों में वंचित तबकों को उनका प्राप्य दिलाना ही रहा है।

## समताकामियों द्वारा धार्मिक-शक्ति की उपेक्षा

जहां तक शक्ति का प्रश्न है सामाजिक परिवर्तन की लड़ाई लड़ने वाले तमाम चिंतक, विशेषकर मार्क्सवादी धार्मिक-शक्ति की बुरी तरह उपेक्षा करते रहे हैं। यह डॉ. आंबेडकर थे जिन्होंने इसकी अहमियत को समझा और साबित किया कि धर्म भी शक्ति का स्रोत होता है और धन-सम्पति की तुलना में 'धर्म' की शक्ति अधिक नहीं, तो किसी प्रकार कम भी नहीं। वास्तव में धर्म का मनुष्य के हृदय पर शासन रहने के कारण यह समाज में शक्ति का एक विराट केन्द्र रहा है। चूंकि हर धर्म के अनुयायियों का लक्ष्य लौकिक-पारलौकिक सुख के लिए ईश्वर-कृपा लाभ करना रहा है और फादर-पुरोहित-मौलवी ईश्वर और भक्तों के बीच मध्यस्थ का रोल निभाते रहे हैं इसलिए धार्मिक-शक्ति का लाभ ये ही उठाते रहे हैं। धार्मिक शक्ति से लैस होने के कारण ही प्राचीन रोमन गणराज्य में प्लेबियन बहुसंख्यक होकर भी अल्पजन पैट्रिशियनों के समक्ष लाचार बने रहे। इस कारण ही भारत के ब्राह्मण तो साक्षात् 'भूदेवता' ही बन गए और समाज में इतनी शक्ति अर्जित कर ली कि 70 वर्ष का क्षत्रिय भी दस वर्ष के ब्राहमण बालक तक के समक्ष सर झुकाने के लिए बाध्य रहे। इन्होंने देवालयों में इतनी धन-सम्पति इकट्ठी कर ली थी कि विदेशी लुटेरे खुद को भारत पर हमला करने से न रोक सके। इस शक्ति से समृद्ध मध्ययुग के यूरोप में पोप-पुजारियों की जीवनशैली वहां के राजे-महाराजाओं के लिए भी इर्ष्या की वस्तु बन गई थी। इस शक्ति से पूरी दुनिया की महिलाएं और भारत के दलित-आदिवासी-पिछड़ों जैसे कई सामाजिक समूहों को पूरी तरह दूर रखा गया। धार्मिक शक्ति का महत्त्व इक्कीसवीं सदी में कम हो गया है, ऐसा दावा कोई नहीं कर सकता।

## सामाजिक-आर्थिक विषमता के खात्मे के लिए : शक्ति के स्रोतों में सामाजिक और लैंगिक विविधता का प्रतिबिम्बन

यह सही है कि हजारों वर्षों से दुनिया के हर देश का शासक-वर्ग ही कानून (धर्माधारित) बना कर शक्ति का वितरण करता रहा है, पर यदि हम यह जानने की कोशिश करें कि सारी दुनिया के शासक जमातों ने अपनी स्वार्थपरता के तहत कौन सा रास्ता अख्तियार कर सामाजिक और आर्थिक विषमता को जन्म दिया; शक्ति का असमान वितरण किया तो हमें विश्वमय एक विचित्र एकरूपता का दर्शन होता

है। हम पाते हैं कि सभी ने शक्ति के केन्द्रों में सामाजिक (Social) और लैंगिक (Gender) विविधता (Diversity) का असमान प्रतिबिम्बन करा कर ही मानव जाति की सबसे बड़ी समस्या को जन्म दिया। अगर हर जगह शक्ति के स्रोतों का बंटवारा विभिन्न तबकों और उनकी महिलाओं की संख्यानुपात में किया गया होता तो क्या दुनिया में आर्थिक और सामाजिक गैर-बराबरी की स्थिति पैदा होती? यह मानव-जाति का बड़ा दुर्भाग्य है कि समाज परिवर्तन का महान रूपकार मार्क्स इस तथ्य की उसी तरह अनदेखी कर गया, जैसा कि उसने नीग्रो-स्लेवरी के मामले में किया।

## शक्ति के असमान बंटवारे से पैदा हुआ : क्रांतियों का सैलाब

बहरहाल प्राचीन काल से लेकर आधुनिक विश्व के उदय के पूर्व तक सर्वत्र ही सामाजिक और लैंगिक विविधता की अनदेखी हुई तो इसलिए कि राजतंत्रीय व्यवस्था के दैविक अधिकार (Divine right) सम्पन्न शासक वर्गों में 'जीओ और जीने दो' की भावना ही विकसित नहीं हुई थी। विभिन्न तबकों और उनकी महिलाओं को शक्ति में शेयर देना उनकी सोच से परे था। धर्माधिकारियों के प्रचंड प्रभाव से दैविक गुलाम (Divine slave) में परिणत वंचित तबकों के स्त्री-पुरुषों में भी शक्ति-भोग की आकांक्षा पैदा नहीं हुई थी। किन्तु बहुत देर से ही सही, 1096 में नारमंडी के राजा विलियम ने स्व-हित में सामंतों का अधिकार संकुचित करने के लिए जब 'ओथ सालिसबरी' के रास्ते जन साधारण से सहयोग मांगा, वह मानव जाति के इतिहास की एक युगांतरकारी घटना साबित हुई। तब कृषक बहुजन ने सामंतों के बजाय सीधे राजा के प्रति अपनी वफादारी की शपथ ली और विनिमय में राजा ने उन्हें शक्ति के स्रोतों में कुछ हिस्सेदारी देने का वादा किया। राजा के साथ सशर्त समझौते से जनसाधारण ने शक्ति (अधिकार) का जो स्वाद चखा, वह राजतंत्रीय-व्यवस्था के लिए काल साबित हुआ। इससे वंचितों में अधिकाधिक शक्ति-भोग की लालसा तीव्रतर होती गयी जो 1215 में 'मैग्नाकार्टा' (स्वाधीनता का पहला मुक्ति-पत्र) अर्जित करते हुए 1689 में 'बिल ऑफ राइट्स' हासिल करने के बाद ही कुछ शांत हुई। मैग्नाकार्टा से बिल ऑफ राइट्स अर्जित करने तक, सुदीर्घ पांच सौ वर्षों का अंग्रेज बहुजन के संग्राम का पथ कांटों भरा रहा। इस दौरान हॉब्स, लॉक जैसे बुद्धिजीवियों ने लोगों में शक्ति-अर्जन की भूख बढ़ाने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ी। परिणामस्वरूप वंचितों को शक्ति के स्रोतों से जोड़ने के लिए फ्रांस, अमेरिका, रूस, चीन सहित दुनिया के अन्यान्य देशों में क्रांतियों का सैलाब उठा। इनसे प्रेरणा लेकर आज भी आर्थिक और सामाजिक गैर-बराबरी के खात्मे का संघर्ष दुनिया के विभिन्न अंचलों में जारी है।

## शक्ति-वितरण के लिए : लोकतांत्रिक व्यवस्था

बहरहाल ब्रितानी जनगण ने पांच सौ सालों तक अधिकार अर्जन के लिए खुद

को जो बार-बार गृह-युद्ध में झोंका उससे प्रेरणा लेकर दूसरे देशों के वंचितों ने सिर्फ क्रांतियों का सैलाब ही पैदा नहीं किया, बल्कि शक्ति के सम्यक बंटवारे के लिए उन्होंने राजतंत्रीय-व्यवस्था को पलट कर जो गणतांत्रिक-व्यवस्था दी उसका भी नकल किया। यही कारण है दुनिया के सारे देशों में एक-एक करके राजतंत्र का ध्वंस और लोकतंत्र की स्थापना होते गया। लोकतंत्र के धीरे-धीरे परिपक्व होने के साथ बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में अधिकांश लोकतान्त्रिक देशों ने उपलब्धि किया कि तमाम तबकों और महिलाओं के मध्य शक्ति का न्यायोचित बंटवारा किये बिना लोकतंत्र को सलामत नहीं रखा जा सकता। ऐसे में उन्होंने समस्त आर्थिक गतिविधियों, शिक्षण संस्थाओं, फिल्म-मीडिया, राजनीति की समस्त संस्थाओं इत्यादि में सामाजिक और लैंगिक विविधता अर्थात् 'जिसकी जितनी संख्या भारी-उसकी उतनी भागीदारी' लागू करने का उपक्रम चलाया। इसका परिणाम यह हुआ कि दुनिया भर में महिलाओं, नस्लीय भेदभाव के शिकार अश्वेतों इत्यादि विभिन्न वंचित समूहों को लोकतांत्रिक देशों में शक्ति में शेयर मिलने लगा। ऐसा होने पर उन देशों में आर्थिक-सामाजिक विषमता के खात्मे और लोकतंत्र के सुदृढ़ीकरण की प्रक्रिया तेज हुई। शक्ति के स्रोतों में सामाजिक और लैंगिक विविधता के रास्ते विषमता की समस्या से निपटने में जिन देशों ने उल्लेखनीय सफलता अर्जित की उनमें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं कनाडा, अमेरिका, यूरोपीय देश, न्यूजीलैंड, आस्ट्रेलिया, मलेशिया और सबसे बढ़कर दक्षिण अफ्रीका।

## विविधता नीति के सहारे विषमता के खात्मे का सर्वोत्तम मिसाल : दक्षिण अफ्रीका

दक्षिण अफ्रीका भारत की तरह ही विविधतामय देश है, जहां 79.6 प्रतिशत मूलनिवासी कालों, 9.1 प्रतिशत गोरों, 8.9 प्रतिशत कलर्ड और 2.5 प्रतिशत एशियाई व अन्य श्रेणी का वास है। नेल्सन मंडेला के सत्ता में आने के पूर्व वहां गोरों ने सामाजिक विविधता की भयावह अनदेखी करते हुए शक्ति के स्रोतों पर 80-85 प्रतिशत कब्जा जमा रखा था। मंडेला के सत्ता में आने के बाद जब वहां लोकतंत्र स्थापित हुआ, सरकार ने संविधान में सामाजिक विविधता लागू करने का प्रावधान सुनिश्चित किया। परिणामस्वरूप वहां के चारों प्रमुख सामाजिक समूहों के मध्य संख्यानुपात में समस्त आर्थिक गतिविधियों, राजनीतिक संस्थाओं इत्यादि में भागीदारी का मार्ग प्रशस्त हुआ। इससे वहां जिन गोरों का शक्ति स्रोतों पर 80-85 प्रतिशत कब्जा था, वे 9-10 प्रतिशत पर सिमटने के लिए बाध्य हुए। ऐसे में उनके हिस्से की 70-75 प्रतिशत सरप्लस शक्ति शेष वंचित समूहों में बंटनी शुरू हो गयी। अब गोरों की निहायत ही लोकतंत्र विरोधी नीति के चलते भयंकर आर्थिक और सामाजिक विषमता की खाई में फंसा दक्षिण अफ्रीका तेजी से इससे उबरने की राह पर चल पड़ा है। उल्लेखनीय

है कि आज संख्यानुपात में सिमटने के कारण गोरे दक्षिण अफ्रीका छोड़ कर भागने लगे हैं।

## भारत में सामाजिक और लैंगिक विविधता का प्रतीकात्मक प्रदर्शन

भारत समाज असंख्य जातियों और धार्मिक समुदायों से गठित है। इसे कुछ सामान्य विशेषताओं के आधार पर चार मुख्य सामाजिक समूहों-(1) सवर्ण, (2) ओबीसी, (3) एससी/एसटी और (4) धार्मिक अल्पसंख्यक- में वर्गीकृत किया गया है। यह वर्गीकरण ही भारत की सामाजिक विविधता है। अगर आजाद भारत के शासकों की मंसा सही होती तो वे इन चारों समूहों और उनकी महिलाओं के संख्यानुपात में आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षिक और धार्मिक क्षेत्र के अवसरों का बंटवारा कराते। इसके लिए वे उन देशों से प्रेरणा लेते, जिनसे लोकतंत्र का प्राथमिक पाठ पढ़ा है। लेकिन हर बात में विदेशियों की नकल करने वाले हमारे शासक वर्ग ने विविधता नीति का अनुसरण करने में पूरी तरह परहेज रखा। हालांकि यह कहना ज्यादती होगी कि बिलकुल ही प्रेरणा नहीं लिया। लिया मगर प्रतीकात्मक, जैसे मनमोहन सिंह की संप्रग सरकार में महिला राष्ट्रपति, मुस्लिम उप-राष्ट्रपति, अल्पसंख्यक प्रधानमंत्री, दलित स्पीकर और आदिवासी डीप्टी स्पीकर बनाया गया। उच्च पदों पर सामाजिक-लैंगिक विविधता के ऐसे सतही प्रतिबिम्बन को हमारे बुद्धिजीवी भारतीय लोकतंत्र की मजबूती का सूचक मान कर खूब खुश होते रहे हैं। स्वाधीन भारत की तमाम सरकारें भी ऐसा ड्रामा करके ही अपने लोकतंत्र पर गर्वित होती रहीं, पर शक्ति के असल स्रोतों में विविधता के प्रतिबिम्बन से परहेज किया। परिणामस्वरूप विश्व में सर्वाधिक गैर-बराबरी का साम्राज्य भारत में कायम हुआ।

यहां के विशेषाधिकार युक्त चिरसुविधाभोगी 15 प्रतिशत अल्पजनों का शक्ति स्रोतों पर लगभग 80-85 प्रतिशत कब्जा है। विविधता की अनदेखी के कारण ही हम महिला सशक्तीकरण के मोर्चे पर बांग्लादेश जैसे पिछड़े राष्ट्र से भी पिछड़े हैं। इस कारण ही सच्चर रिपोर्ट में उभरी मुस्लिम समुदाय की बदहाली ने राष्ट्र को सकते में डाल दिया है। इस कारण ही एससी/एसटी और ओबीसी की उद्योग-व्यापार, फिल्म-मीडिया में नगण्य तो देवालयों में शून्य भागीदारी है। इतनी गैर-बराबरी किसी भी देश में क्रांति को आमंत्रण दे देती, लेकिन भारत में वैसा कुछ नहीं हो रहा है तो क्यों, इसका खुलासा कोई समाज-मनोविज्ञानी ही कर सकता है। पर, ऐसा नहीं कि इसका कोई असर ही नहीं हो रहा है। हो रहा है, तभी तो विषमता से पीड़ित एक तबके ने 2050 तक बन्दूक के बल पर लोकतंत्र के मंदिर पर कब्जा जमा लेने की खुली घोषणा कर दी है। पर क्या हमारा शासक वर्ग इससे परेशान है? बहरहाल अगर गैर-बराबरी के दुष्परिणामों को जानते हुए भी शासक वर्ग सामाजिक और लैंगिक विविधता की बुरी तरह उपेक्षा किये जा रहा है तो उसके पृष्ठ में क्रियाशील है वर्णवादी मानसिकता।

## सामाजिक और लैंगिक विविधता की सबसे बड़ी दुश्मन : वर्ण-व्यवस्था

हमारे शासकों की सामाजिक-लैंगिक विविधता विरोधी मानसिकता का सम्बन्ध उस वर्ण-व्यवस्था से है, जिसे उनके महान आदर्श विवेकानंद ने मानव-जाति को ईश्वर-प्रदत सर्वश्रेष्ठ उपहार कहा है। महात्मा गांधी जैसे राष्ट्रपिता और इ एस नम्बूदरीपाद जैसे महान मार्क्सवादी भी विवेकान्द की भांति वर्ण-व्यवस्था की प्रशंसा में पंचमुख रहे। पर, आर्यों द्वारा प्रवर्तित वर्ण-व्यवस्था दुनिया की ऐसी पहली व अनुपम सामाजिक व्यवस्था रही, जिसमें किसी देश की बहुसंख्यक आबादी को शक्ति (आर्थिक-राजनीतिक-शैक्षिक-धार्मिक) में एक कतरा भी न देने की चिरस्थाई व्यवस्था की गयी। यह दुनिया की पहली व्यवस्था थी जिसमें किसी समाज को चार भागों (ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य और शूद्रातिशूद्र) में बांटकर एक अपरिवर्तनीय सामाजिक विविधता को जन्म दिया गया। इसमें अध्ययन-अध्यापन, पौरोहित्य, राज्य-संचालन, सैन्य-वृत्ति, भूस्वामित्व, व्यवसाय-वाणिज्य इत्यादि के सारे अवसर जन्मसूत्र से सिर्फ ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्यों से युक्त सवर्ण-पुरुषों के लिए आरक्षित रहे। इसके प्रवर्तकों ने खुद स्व-वर्ण की महिलाओं तक को शक्ति के स्रोतों में स्वतन्त्र भागीदारी नहीं दिया। उन्होंने शूद्रातिशूद्रों को आर्थिक-राजनीतिक के साथ शैक्षिक-धार्मिक शक्ति से पूरी तरह दूर रखा। धार्मिक स्रोतों से दूर रखने के लिए जहां शूद्रातिशूद्रों को तीन उच्चतर वर्णो(सवर्णो) की निष्काम सेवा में मोक्ष संधान करने का कानून बनाया, वहीं सभी स्त्रियों को पति-चरणों में स्वर्ग ढूढ़ने का प्रावधान दिया। शूद्रातिशूद्रों और नारियों के लिए किसी भी किस्म की शक्ति का भोग अधर्म था। इस व्यवस्था द्वारा पूरी तरह शक्तिहीन बने शूद्रातिशूद्रों के लिए अच्छा नाम तक रखना वर्जित रहा। चूंकि वर्ण-व्यवस्था ईश्वरकृत रूप में प्रचारित रही इसलिए सवर्ण शक्ति के स्रोतों का भोग अपना दैविक-अधिकार मानने की मानसिकता से पुष्ट रहे। विपरीत इसके दैविक-गुलाम बने शूद्रातिशूद्र और महिलाएं खुद को पूरी तरह शक्ति के अनाधिकारी समझते रहे। वर्ण-व्यवस्था के कानूनों के तहत शक्ति के बंटवारे का कार्य आईपीसी (भारतीय दंड संहिता), जिसके तहत बौद्धोत्तर भारत में पहली बार कानून की नजरों में एक बराबर किया गया, के लागू होने के एक दिन पूर्व तक चलता रहा। पर आईपीसी भी शक्ति के स्रोतों को सवर्णों के चंगुल से मुक्त कराने में आंशिक रूप से ही सफल हो पाई। इसलिए आजाद भारत को विरासत में जहां भयावह आर्थिक और सामाजिक गैर-बराबरी मिली, वहीं दुर्भाग्य से सत्ता की बागडोर उन्हीं लोगों के हाथ में आई जो शक्ति के सभी स्रोतों पर पूर्णरूपेण कब्जा रखना अपना दैविक-अधिकार मानते रहे।

## स्वाधीन भारत के सुपर-स्टार नेताः लोकतंत्र-विरोधी

संविधान निर्माता बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर को स्वाधीन भारत के शासकों की मानसिकता का अहसास था। इसलिए उन्होंने संविधान सौंपने के पूर्व राष्ट्र को सावधान करते हुए कहा था कि हमें निकटतम समय के मध्य आर्थिक और सामाजिक

विषमता का खात्मा कर लेना होगा, नहीं तो विषमता से पीड़ित जनता लोकतंत्र के परखचे उड़ा देगी। लेकिन पंडित नेहरू, इंदिरा गांधी, राजीव गांधी, ज्योति बसु, अटल बिहारी वाजपेयी, जय प्रकाश नारायण जैसे राजनीति के सुपर-स्टार तक भी लोकतंत्र की सलामती की दिशा में कोई ठोस कदम नहीं उठा सके। फलतः विषमता की खाई बढ़ती और बढ़ती गयी। हालात यहां तक पहुंच गये कि 2009 में विषमता से पीड़ित एक तबके द्वारा 2050 तक लोकतंत्र के मंदिर पर बंदूक के जोर पर कब्जा जमाने का ऐलान कर दिया गया। यदि लोकतंत्र की सलामती की कसौटी पर इन बड़े नेताओं की भूमिका का सही तरह से आंकलन किया जाय तो वे लोकतंत्र विरोधी ही नजर आयेंगे।

## बहुजन डाइवर्सिटी मिशन का उदय

स्वाधीन भारत के शासकों की लोकतंत्र-विरोधी नीतियों के चलते आर्थिक और सामाजिक गैर-बराबरी का जो बेइंतहां विस्तार हुआ उसके खात्मे के लिए गांधीवादी, मार्क्सवादी, राष्ट्रवादी, लोहियावादी और आंबेडकरवादी विचारधारा से जुड़े ढेरों राजनीतिक व सामाजिक संगठन 'समतामूलक समाज की स्थापना', सामाजिक परिवर्तन और आर्थिक मुक्ति', 'सामाजिक विषमता का खात्मा' जैसे आकर्षक नारों के साथ वजूद में आये, पर लक्ष्य से दूर रहे। इसका खास कारण यह रहा कि सामाजिक और आर्थिक विषमता की उत्पत्ति का सुस्पष्ट चित्र उनके पास नहीं था। इसलिए वे टुकड़ों-टुकड़ों में शक्ति अर्जन की लड़ाई लड़ते रहे। कोई भूमि में बंटवारे की तो कोई मजदूरी बढ़वाने की; कोई दलितों के लिए तो कोई पिछडों के लिए; कोई मुसलमानों की तो कोई महिलाओं के हितों की लड़ाई लड़ता रहा। आज की तारीख में कोई पिछडों और मुसलमानों को नौकरियों में तो कोई महिलाओं को राजनीति में आरक्षण दिलाने की लड़ाई लड़ रहा है। इनमें किसी के पास भी ऐसा प्रोग्राम नहीं रहा जिससे मानव-जाति की सबसे बड़ी समस्या का मुकम्मल हल; लोकतंत्र का सुदृढ़ीकरण तथा सभी समुदायों का समान सशक्तीकरण किया जा सके। ऐसी स्थिति में ही 15 मार्च, 2007 को हम कुछ आंबेडकरवादी लेखक-एक्टिविस्टों ने मिलकर 'बहुजन डाइवर्सिटी मिशन' की स्थापना की। चूंकि मिशन से जुड़े लोगों का यह दृढ़ विश्वास रहा है कि आर्थिक और सामाजिक गैर-बराबरी ही मानव-जाति की सबसे बड़ी समस्या है तथा शक्ति के स्रोतों का विभिन्न तबकों और महिलाओं के मध्य असमान बंटवारे से ही सारी दुनिया सहित भारत में भी इसकी उत्पत्ति हुई है, इसलिए ही हमने शक्ति के सभी स्रोतों में सामाजिक और लैंगिक विविधता का प्रतिबिम्बन कराने की कार्ययोजना बनायी। ऐसे में मिशन के तरफ से निम्न क्षेत्रों में सामाजिक और लैंगिक विविधता का प्रतिबिम्बन कराने अर्थात् विविधतामय भारत के चार सामाजिक समूहों-सवर्ण, ओबीसी, एससी/एसटी और धार्मिक अल्पसंख्यकों- के स्त्री-पुरुषों की संख्यानुपात में अवसरों के बंटवारे की निम्न दस सूत्रीय कर्मसूची स्थिर की।

1. सेना व न्यायालयों सहित सरकारी और निजी क्षेत्र की सभी प्रकार की, सभी स्तर की नौकरियों;
2. सरकारी और निजी क्षेत्रों द्वारा दी जाने वाली सभी वस्तुओं की डीलरशिप;
3. सरकारी और निजी क्षेत्रों द्वारा की जाने वाली सभी वस्तुओं की खरीददारी;
4. सड़क-भवन निर्माण इत्यादि के ठेकों, पार्किंग, परिवहन;
5. सरकारी और निजी क्षेत्रों द्वारा चलाये जाने वाले छोटे-बड़े स्कूलों, विश्वविद्यालयों, तकनीकी-व्यावसायिक शिक्षण संस्थाओं के संचालन, प्रवेश व अध्यापन;
6. सरकारी और निजी क्षेत्रों द्वारा अपनी नीतियों, उत्पादित वस्तुओं इत्यादि के विज्ञापन के मद में खर्च की जाने वाली धनराशि;
7. देश-विदेश की संस्थाओं द्वारा गैर-सरकारी संस्थाओं (एनजीओ) को दी जाने वाली धनराशि;
8. प्रिंट व इलेक्ट्रॉनिक मीडिया एवं फिल्म-टीवी के सभी प्रभागों;
9. रेल-राष्ट्रीय मार्गों की खाली पड़ी भूमि सहित तमाम सरकारी और मठों की खाली पड़ी जमीन व्यावसायिक इस्तेमाल के लिए अस्पृश्य-आदिवासियों में वितरित हो एवं पौरोहित्य के साथ;
10. ग्राम-पंचायत, शहरी निकाय, संसद-विधासभा की सीटों राज्य एवं केन्द्र की कैबिनेट; विभिन्न मंत्रालयों के कार्यालयों; विधान परिषद-राज्यसभा; राष्ट्रपति, राज्यपाल एवं प्रधानमंत्री व मुख्यमंत्री के कार्यालयों इत्यादि।

## डाइवर्सिटी से ही मुमकिन है : धन का न्यायपूर्ण बंटवारा

अगर विभिन्न तबकों और उनकी महिलाओं के मध्य शक्ति के स्रोतों का असमान बंटवारा ही आर्थिक और सामाजिक विषमता की सृष्टि का मूल कारण है तो बीडीएम के दस सूत्रीय एजेंडे उसके निवारण में पूरी तरह सक्षम हैं। इनमें एक वैश्विक अपील है। इसे लागू कर किसी भी देश में समतामूलक समाज की स्थापना की जा सकती है। जहां तक भारत का सवाल है यहां विषमता इसलिए है क्योंकि 15 प्रतिशत सवर्णों का शक्ति के तमाम स्रोतों पर 80-85 प्रतिशत वर्चस्व है। 15 प्रतिशत कहना ज्यादती होगी, क्योंकि इसमें उनकी महिलाओं की भागीदारी अति न्यून है। ऐसे में कहा जा सकता है कि बमुश्किल 8-9 प्रतिशत विशेषाधिकारयुक्त लोगों का ही शक्ति के स्रोतों पर दक्षिण अफ्रीका के गोरों की भांति ही 80-85 प्रतिशत कब्जा है। देश के योजनाकारों की बहुत बड़ी कमी रही कि इस विषमताकारी वर्चस्व को नियंत्रित किये बिना, वे वंचित समुदायों की बेहतरी की योजनाएं बनाते रहे। यह योजनाएं भी हिस्सेदारीमूलक नहीं, बहुधा राहतकारी। बहरहाल बीडीएम का दस सूत्रीय एजेंडा लागू होने पर 80-85 प्रतिशत कब्जा जमाने लोग अपनी संख्यानुपात पर सिमटने के लिए बाध्य होंगे, जैसे दक्षिण अफ्रीका के गोरे हुए। ऐसा होने पर उनके हिस्से की अतिरक्त (Surplus) शक्ति के बाकी तीन वंचित समुदायों के

मध्य बंटने के दरवाजे स्वतः खुल जायेंगे। शक्ति के उपरोक्त स्रोतों में सामाजिक और लैंगिक विविधता लागू होने पर सवर्ण, ओबीसी, एससी/एसटी और धार्मिक-अल्पसंख्यकों के मध्य व्याप्त विषमता का धीरे-धीरे विलोप हो जाएगा।

अब जहाँ तक देश की टॉप 1 प्रतिशत आबादी के हाथ में 73% और टॉप के कुल 10% लोगों के हाथ में 90% से अधिक धन-दौलत जाने का सवाल है, यह भयावह स्थिति इसलिए पैदा हुई क्योंकि देश के हुक्मरानों ने धनार्जन के समस्त स्रोतों में सभी सामाजिक समूहों को उचित शेयर देने का प्रावधान ही नहीं किया। यह भूल सिर्फ शासकों की ओर से ही नहीं हुई, वंचितों के हकों की लड़ाई लड़ने वाले संगठनों ने भी लगभग उन्हीं की गलती को दोहराया। वे सारी उर्जा उस भूमि के बंटवारे की असफल लड़ाई में लगाते रहे, जिस भूमि का आज जीडीपी में योगदान 15% से भी नीचे है। यदि उन्होंने भूमि के साथ सप्लाई , डीलरशिप, ठेकों, पार्किंग, परिवहन, फिल्म-मीडिया इत्यादि अर्थोपार्जन के समस्त स्रोतों के बंटवारे की लड़ाई लड़ा होता, स्थिति आज जैसी बदतर कतई नहीं होती। बहरहाल डाइवर्सिटी का उपरोक्त दस सूत्रीय एजेंडा लागू होने पर धन-दौलत पैदा करने वाले समस्त स्रोतों का भारत के सभी सामाजिक समूहों के मध्य बंटने की का मार्ग प्रशस्त होगा। इससे शर्तिया तौर पर धन के न्यायपूर्ण बँटवारे की प्रक्रिया शुरू होगी और कालांतर में देश आर्थिक विषमता की समस्या से पार पा लेगा। बहरहाल बीडीएम के दस सूत्रीय एजेंडे के लागू होने से राष्ट्र बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर के आर्थिक और सामाजिक विषमता के खात्मे के सपने को पूरा करने में समर्थ होगा ही, इसके साथ देश की टॉप की 10% अबादी ने 90% से अधिक दौलत पर कब्जा जमाकर जो विस्फोटक स्थिति पैदा की है, धीरे-धीरे देश उससे भी पार पा लेगा। लेकिन इससे भी आगे बढ़कर राष्ट्र दूसरी कई समस्यायों से भी पार पा लेगा।

## भ्रष्टाचार को कम करने के लिए : डाइवर्सिटी

असंख्य समस्यायों से घिरे अभागे देश भारत में भ्रष्टाचार एक बड़ा मुद्दा है। कईयों के अनुसार तो यही सबसे बड़ा मुद्दा है और कुछ वर्ष पूर्व इसे सबसे बड़ा मुद्दा बता और इसके निवारण के लिए जनलोकपाल लागू करने का शोर मचाकर एक एनजीओ गिरोह ने देश की राजनीति में खास जगह बना लिया। किन्तु तमाम शोर-शराबों के बावजूद आज भी पहले की भांति रह-रहकर भ्रष्टाचार के बड़े-बड़े मामले सामने आ जाते हैं,जिसकी ताजी मिसाल देश का सबसे बड़ा बैंकिंग घोटाला है। अभी पीएनबी के घोटाले का शोर थमा भी नहीं था कि कोठारी पिता-पुत्र का घोटाला सामने आ गया, जिसमें यह तथ्य सामने आया कि पिता-पुत्र ने फर्जी दस्तावेजों के सहारे लगभग साढ़े तीन हजार करोड़ का घोटाला कर डाला है। बहरहाल हाल के दिनों में नीरव मोदी तथा रोटोमैक कंपनी के मालिक विक्रम कोठारी और उनके बेटे राहुल कोठारी ने बैंकिंग घोटाले की दुनिया में कीर्तिमान

स्थापित कर एक बार फिर साबित कर दिया है कि सवर्ण ही भ्रष्टाचार का पर्याय हैं : वे ही राष्ट्र को हिलाकर रख देने वाले घपला-घोटाला कर सकते हैं। लेकिन डाइवर्सिटी लागू होने पर सवर्ण धीरे-धीरे ऐसा काण्ड अंजाम देने में असमर्थ हो जायेंगे।

डाइवर्सिटी सिद्धांत लागू होने पर शक्ति के सभी स्रोतों में अवसरों का बंटवारा भारत के चार सामाजिक समूहों-सवर्ण, ओबीसी, एससी/एसटी और धार्मिक अल्पसंख्यकों—के स्त्री-पुरुषों के संख्यानुपात में होगा। इससे जिन सवर्णों का उद्योग, व्यापार, मीडिया, मिलिट्री के उच्च पदों, न्यायपालिका, मंत्रालयों के सचिव आदि पदों पर 80-85 प्रतिशत कब्जा हैं, एवं जहां का भ्रष्टाचार ही राष्ट्र के लिए विराट समस्या बन गया है, वहां वे 7-8 प्रतिशत पर सिमटने के लिए बाध्य होंगे। कारण, उपरोक्त सभी क्षेत्रों में लैंगिक विविधता लागू होने पर सवर्णों के कुल 15 प्रतिशत का आधा हिस्सा उनकी महिलाओं के हिस्से में चला जाएगा। हालांकि सवर्ण महिलाओं में भी नीरा राडिया, बरखा दत्त इत्यादि जैसी महिलायें हैं जिन्हें अपवाद ही माना जाएगा। सामान्यतया सवर्ण महिलाओं में भी दलित-पिछड़ों की भांति ऐतिहासिक कारणों से आकांक्षा-स्तर और उपलब्धि-अभिप्रेरणा निम्न स्तर की है। इसका आधिक्य सवर्ण पुरुषों में ही हैं। ऐसे में सवर्ण पुरुष जब डाइवर्सिटी के रास्ते महज 7-8 प्रतिशत अवसरों तक सिमटने के लिए बाध्य होंगे, तब निश्चय ही भ्रष्टाचार में मात्रात्मक गिरावट आएगी।

भ्रष्टाचार कम करने में डाइवर्सिटी एक और रूप में प्रभावी साबित हो सकती है। वह इस तरह कि जब अपराधियों का संरक्षण व बचाव करने वाली संस्थाओं में सवर्णों की उपस्थिति 80-85 प्रतिशत की जगह महज 7-8 प्रतिशत पर सिमटेगी तब सवर्ण भ्रष्टाचारियों में मनोवैज्ञानिक सुरक्षा की कमी आ जाएगी। इस मनोवैज्ञानिक सुरक्षा के अभाव में निश्चय ही भ्रष्टाचर में गिरावट आयेगी।

## लोकतंत्र की सलामती के लिए : डाइवर्सिटी

25 नवम्बर, 1949 को को संविधान सौंपने के पूर्व बाबा साहेब ने राष्ट्र को सावधान करते हुए कहा था कि 'हमें निकटतम समय के मध्य आर्थिक और सामाजिक असमानता दूर कर लेनी होगी, नहीं तो विषमता से पीड़ित जनता लोकतंत्र के ढांचे को विस्फोटित कर सकती है।' ऐसे में लोकतंत्र की सलामती को ध्यान में रखते हुए, आजाद भारत की तमाम सरकारों की कर्मसूचियां विभिन्न सामाजिक समूहों के मध्य शक्ति (आर्थिक-राजनीतिक-शैक्षिक-धार्मिक) के सम्यक बंटवारे पर केन्द्रित होनी चाहिए थीं। पर विगत 70 सालों में ऐसा नहीं किया गया इसलिए विश्व में सबसे ज्यादा आर्थिक-सामाजिक विषमता भारत में है। विषमता से पीड़ित एक तबके ने 2050 तक बन्दूक के बल पर लोकतन्त्र के मंदिर पर कब्जा जमाने का ऐलान भी कर दिया है। ऐसी घोषणा देर सबेर दूसरे वंचित समूह भी कर सकते

हैं। जाहिर है घोर आर्थिक-सामाजिक विषमता के चलते, कल हमारे लोकतंत्र का ढांचा विस्फोटित भी हो सकता है। किन्तु शक्ति के स्रोतों में सामाजिक और लैंगिक विविधता लागू होने पर शर्तिया तौर पर यह खतरा टल सकता है।

### मुक्कमल महिला सशक्तीकरण के लिए : डाइवर्सिटी

सारी दुनिया में सदियों से महिलाओं को शक्ति के सभी स्रोतों से दूर रखकर ही अशक्त बनाया गया। उन्हें मुक्कमल रूप से सशक्त सिर्फ शक्ति के सभी स्रोतों में 50 प्रतिशत हिस्सेदारी देकर ही बनाया जा सकता है। और ऐसा तभी हो सकता है जब बीडीएम के पूर्व उल्लिखित दस सूत्रीय एजेण्डे में लैंगिक विविधता लागू हो। शक्ति के सभी केंद्रों में सामाजिक विविधता के साथ लैंगिक विविधता भी लागू करने से महिला सशक्तीकरण के लक्ष्य को शत प्रतिशत हासिल कर सकते हैं।

### सच्चर रिपोर्ट में उभरी मुस्लिम समुदाय की बदहाली की तस्वीर को खुशहाली में बदलने के लिए : डाइवर्सिटी

जैसा कि हम बार-बार कह रहे हैं कि शक्ति के स्रोतों का समाज के विभिन्न तबकों और उनकी महिलाओं के मध्य असमान बंटवारे से ही विषमता पैदा होती है। सच्चर रिपोर्ट में उभरी मुसलिम समाज की बदहाली इसलिए है कि आजाद भारत के काले अंग्रेजों ने उन्हें सुपरिकल्पित तरीके से शक्ति के स्रोतों से दूर रखा। डाइवर्सिटी लागू होने से उनकी बदहाली की तस्वीर खुशहाली में बदल सकती है। उनकी बदहाली दूर करने के लिए डाइवर्सिटी से बेहतर और कोई उपाय नहीं हो सकता।

### आरक्षण से उपजते गृहयुद्ध के हालात से निजात पाने के लिए : डाइवर्सिटी

आज जाट, गुर्जर, पटेल, कायस्थ, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य हर किसी को आरक्षण चाहिए। विभिन्न जातियों में आरक्षण की बढ़ती मांग ने धीरे-धीरे गृह युद्ध के हालात पैदा कर दिये हैं। इससे कभी भी विस्फोटक स्थिति पैदा हो सकती है। डाइवर्सिटी लागू होने पर राष्ट्र इस विस्फोटक हालात से निजात पा जाएगा, इसकी पूरी उम्मीद है।

### नक्सलवाद के शमन के लिए : डाइवर्सिटी

बड़े से बड़े अर्थशास्त्री हों या सड़कछाप बुद्धिजीवी, हर कोई मानता है कि नक्सलवाद की जड़ आर्थिक विषमता है। नक्सलवाद को आंतरिक सुरक्षा के लिए सबसे बड़ा खतरा घोषित करने वाली सरकारें भी ऐसा मानकर ही नक्सल प्रभावित इलाकों में करोड़ों-करोड़ों का आर्थिक पैकेज घोषित करती हैं। पर, ये योजनाएं इसलिए विफल हो जाती हैं कि उनमें नक्सलवाद से जुड़ रहे लोगों को अर्थोपार्जन के सभी क्षेत्रों में भागीदारी सुलभ कराने का रत्तीभर भी दम नहीं रहता। डाइवर्सिटी लागू होने पर

हर सामाजिक समूह के स्त्री-पुरुषों को उनके संख्यानुपात में, अर्थोपार्जन की हर गतिविधियों में वाजिब हिस्सा मिलेगा। ऐसा होने पर नक्सलवाद धीरे-धीरे खत्म हो जाएगा, ऐसी कल्पना दुविधामुक्त भाव से की जा सकती है।

## अस्पृश्यों को हिन्दुओं के अत्याचार से बचाने के लिए : डाइवर्सिटी

जो हिन्दू दलितों पर तरह-तरह का जुल्म करने से जरा भी नहीं हिचकते, उनकी एक मनोवैज्ञानिक दुर्बलता है। वे सख्त का भक्त होते हैं। सख्त का भक्त होते हैं इसलिए बन्दर, भालू, सांप, गदहा, पेड़-पौधा, ईट-पत्थरों को देवता मानकर पूजते रहते हैं। हिन्दुओं की इस दुर्बलता से ही भारत में 33 करोड़ देवता पैदा हो गये हैं। हिन्दू सख्त का भक्त होते हैं इसलिए विदेशागत शासकों का कृपालाभ पाने के लिए शर्मनाक हद तक समझौते करते रहे। वे सख्त का भक्त हैं इसलिए जो दलित धन-बल, शिक्षा बल इत्यादि से सम्पन्न हैं उनकी मित्रता जीतने के लिए सदा तत्पर रहते हैं। वे उन्हीं दलितों पर अपना पराक्रम दिखाते हैं जो भूमिहीन, धनहीन और शिक्षाहीन हैं। डाइवर्सिटी लागू होने पर दलित उद्योगपति, व्यापारी, ठेकेदार, अखबार-चैनलों के मालिक बनने लगेंगे। इस तरह डाइवर्सिटी के रास्ते धीरे-धीरे वे शक्तिहीन से शक्तिमान में तब्दील हो जाएंगे। तब जो हिन्दू उन पर अत्याचार करते हैं, वे ही उनकी निकटता पाने के लिए तरह-तरह का उपाय ढूंढ़ने लगेंगे।

## बहुराष्ट्रीय कंपनियों को रोकने के लिए : डाइवर्सिटी

भारत में बहुर्राष्ट्रीय कंपनियां भारतीय कंपनियों की नकल करते हुए अपनी व्यावसायिक गतिविधियों (डीलरशीप, सप्लाई, कर्मचारियों की भर्ती) में डाइवर्सिटी लागू करने से पूरी तरह परहेज करती हैं : जबकि अपने देश में लागू करती हैं। पिछले एक दशक में कई ऐसे मौके आये जब प्राइवेट सेक्टर में आरक्षण का दबाव सरकारों के तरफ से बनाया गया। तब जहां देशी कंपनियों ने पूरी तरह हाथ उठा दिया, वहीं बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने कह दिया कि ऐसा होने पर हम अपना कारोबार समेट कर वापस चले जाएंगे। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के पुतले फूंककर उन्हें वापस भगाने की परिकल्पना करने वालों ने कभी उनकी इस दुर्बलता का फायदा उठाने की कोशिश नहीं की। डब्ल्यू.टी.ओ. की शर्तों में बंधे होने के कारण हम उन्हें भारत में कारोबार करने से रोक नहीं सकते, पर डाइवर्सिटी की शर्तें थोपने में कोई कानूनी बाधा नहीं है। ऐसी शर्त थोपने पर मुमकिन है कि अपना कारोबार समेट लें। अगर ऐसा होता है तब तो साम्राज्यवाद विरोधियों की मनमांगी मुरादें पूरी हो जाएगी। लेकिन इस बात की सम्भावना ज्यादा है कि वे डाइवर्सिटी की शर्तें मान जाएंगी। ऐसे में डाइवर्सिटी की शर्तें बहुराष्ट्रीय कंपनियों को भगाने या उनके व्यवसाय को मानवीय चेहरा देने में काफी प्रभावी हो सकती हैं।

## विविधता में एकता को सार्थकता प्रदान करने के लिए : डाइवर्सिटी

भारत की विविधता में एकता है, यह बात अंग्रेज इतिहासकार विन्सेन्ट स्मिथ ने आज से लगभग 150 साल पहले कही थी। उनकी उस बात का अन्धानुकरण करते हुए, आज भी भारत के तमाम नेता, लेखक, कवि, प्रोफेसर तोते की तरह रटते रहते हैं—'भारत की विविधता (Diversity) में एकता (Unity) है।' किन्तु भारत की विविधता में एकता है, इससे बड़ा झूठ कुछ हो ही नहीं सकता। भारत की भाषाई, सांस्कृतिक, धार्मिक, क्षेत्रीय, सामाजिक और लैंगिक इत्यादि तमाम विविधताओं पर ठंडे दिमाग से विचार करने पर यहां विविधता में एकता नहीं : शत्रुता, शत्रुता और सिर्फ शत्रुता का बोलबाला नजर आता है। भाषा के आधार पर राज्यों का बंटवारा होने के बावजूद भाषा को लेकर झगड़े होते रहते हैं। धार्मिक विविधता में शत्रुता की व्याप्ति है इसलिए रह-रह कर दंगों का सैलाब उठता रहता है। क्षेत्रीय विविधता में कथित एकता के परखचे उस समय उड़ने लगते हैं, जब समय-समय पर राज ठाकरों का उदय होता है। लैंगिक विविधता में भी सौहार्द्र का अभाव है, इसका पता स्त्री-लेखन में मिलता है। लेकिन राष्ट्र की जो सबसे बड़ी चिन्ता है, वह सामाजिक विविधता में शत्रुता की पुरअसर व्याप्ति है। सामाजिक विविधता में व्याप्त शत्रुता ने भारत की असंख्य जातियों को शत्रुता से लबरेज अलग-अलग राष्ट्रों में बांट कर रख दिया है। इसके मूल में है वर्ण-व्यवस्था जो मुख्यतः शक्ति के स्रोतों (आर्थिक-राजनीतिक-शैक्षिक-धार्मिक) और सामाजिक मर्यादा की वितरण व्यवस्था रही। इसमें विभिन्न समाजों के मध्य शक्ति और मानवीय मर्यादा का ऐसा असमान बंटवारा हुआ कि सदा के लिए शक्ति का असंतुलन पैदा हो गया, जिससे राष्ट्र आज तक उबर नहीं पाया है। शक्ति के इस असंतुलन ने विभिन्न समाजों के बीच चिरस्थाई तौर पर शत्रुता पैदा कर दी है। इसलिए यहां सामाजिक समरसता और भ्रातृत्व दूरवीक्षण यंत्र देखने की चीज बनकर रह गई है। शक्ति के सभी स्रोतों में सामाजिक और लैंगिक विविधता लागू होने पर सदियों से चला आ रहा असंतुलन दूर हो जाएगा। ऐसा होने पर ही विविधता में एकता होगी। ऐसा जब तक नहीं होता है, तब तक हमें दिल से नहीं, जबरन कहते रहना पड़ेगा : 'हमारी विविधता में एकता है।'

## ब्राह्मणशाही के खात्मे के लिए : डाइवर्सिटी

सामाजिक बदलाव की लड़ाई लड़ने वाले तमाम संगठनों और बुद्धिजीवियों ने धार्मिक गतिविधियों को पूरी तरह नजरअंदाज किया। यह बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर थे जिन्होंने बताया कि शक्ति के स्रोत के रूप में धर्म का महत्त्व अगर आर्थिक शक्ति से ज्यादा नहीं, तो कम भी नहीं। शक्ति के ऐसे महत्वपूर्ण स्रोत पर 3 प्रतिशत जनसंख्या के अधिकारी ब्राह्मण समुदाय के पुरुषों का शतप्रतिशत कब्जा रहा है

और आज भी है। इसके कारण ही ब्राह्मण भूदेवता बन गये और उनके दस वर्ष के जाहिल-गंवार बच्चों तक को बड़े से बड़े गैर-ब्राह्मण नेता-विद्वान तक दण्डवत् करने को तत्पर रहे। इस शक्तिशाली स्रोत से पूरी तरह दूर रहने के कारण ही दलित, पिछड़े और महिलाएं लगभग मनुष्येत्तर प्राणी में तब्दील हुईं। इस शक्तिशाली स्रोत के बंटवारे का पहली बार वैचारिक अभियान बीडीएम ने शुरू किया है। अगर पौरोहित्य में सामाजिक और लैंगिक विविधता लागू होती तो जिन ब्राह्मणों का इसमें 100% आधिपत्य है वे 1½ प्रतिशत पर सिमटने के लिए बाध्य होंगे। इससे शर्तिया तौर पर ब्राह्मणशाही का खात्मा हो जाएगा।

## सामाजिक प्रदूषण से निर्लिप्त : राजनीतिक पार्टियां

जिस तरह धार्मिक और सांस्कृतिक विविधता के प्रति अनादर सांप्रदायिक दंगों की लहरें पैदा करता रहा है तथा जैविक-विविधता की अनदेखी प्राकृतिक पर्यावरण के लिए संकट बन गयी है, उसी तरह भारत में शक्ति के स्रोतों, विशेषकर अर्थोपार्जन के स्रोतों में सामाजिक और लैंगिक विविधता की उपेक्षा सदियों से समाज में नाना प्रकार के संकटों को जन्म देती रही है। इस कारण ही कोटि-कोटि शक्तिहीनों ने हिंदू-धर्म का परित्याग कर विशाल धार्मिक-अल्पसंख्यक समुदाय को वजूद में लाया। इस कारण ही अस्पृश्यों ने प्लासी (1757 में जब ब्रितानी साम्राज्य की बुनियाद पड़ी) से लेकर कोरेगांव-युद्ध (1818 में जहां ब्रिटिश साम्राज्य को पूर्णता मिली) तक अंग्रेजों का साथ दिया। आज जबकि भारत एक विश्व आर्थिक महाशक्ति बनने की राह पर है आतंकवाद, क्षेत्रवाद, माओवाद जहां विकास के समक्ष कड़ी चुनौती पेश कर रहे हैं, वहीं दलित-उत्पीड़न, महिला-उत्पीड़न इत्यादि की भरमार के कारण भारत की छवि अन्तर्राष्ट्रीय जगत में एक बर्बर व असभ्य मुल्क के रूप में स्थापित हो रही है। इस कारण ही कभी प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने विषमता के खात्मे के लिए अपने कार्यकाल में देश के अर्थशास्त्रियों के समक्ष एक सृजनशील सोच के लिए एकाधिक बार गुहार लगाया था। तथा राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल ने बदलाव की एक नई क्रांति का आह्वान किया था। इसी तरह दूसरी पार्टियों के नेता भी समय-समय पर विषमता को लेकर छाती पीटते रहते हैं। पर विभिन्न दलों के तरफ से समय-समय पर पेश की जाने वाली कर्मसूचियों पर नजर दौड़ाने पर साफ दिखता है कि उनके पास या तो धन-दौलत के न्यायपूर्ण-वितरण का सही नक्शा नहीं है या वे विषमता के खात्मे के प्रति बिल्कुल ही अनिच्छुक हैं, शायद इच्छाकृत रूप से।

## पर्यावरणवादियों से प्रेरणा लेने की जरूरत

अब लाख टके का सवाल है कि जब हमारी राजनीतिक पार्टियां आर्थिक और सामाजिक गैर-बराबरी की भीषणता, विशेषकर धन-दौलत के असमान बंटवारे से चिंतित होने

के बावजूद इसके खात्मे की दिशा में कारगर कदम नहीं उठा रहीं हैं तब हम क्या करें? चूंकि इस समस्या की सृष्टि शक्ति के स्रोतों (आर्थिक-राजनीति-शैक्षिक-धार्मिक) में सामाजिक और लैंगिक विविधता के असमान प्रतिबिम्बन के कारण ही हुई है इसलिए हमें हर हाल में शक्ति के स्रोतों में इसका प्रतिबिम्बन कराने का प्रयास करना होगा। इसके लिए पर्यावरणप्रेमियों से प्रेरणा लेना श्रेयस्कर होगा। पर्यावरणवादी जानते हैं कि जैविक-विविधता की रक्षा किये बगैर पर्यावरण के खतरों से मानव-जाति को नहीं बचाया जा सकता। इसलिए वे वृक्षारोपण करने व जनजागृति फैलाने के साथ ही सरकारी और निजी-क्षेत्र की उन परियोजनाओं का जी-जान से खिलाफत करते हैं जो पर्यावरण और जैव-विविधता के लिए क्षतिकर हैं। भारत के पर्यावरणवादी भी ऐसा करते हैं। उनके प्रयास से करोड़ों-अरबों की ढेरों योजनाएं खटाई में पड़ गई हैं। सरकारों के लिए उनकी मांगों की अनदेखी करना आसान नहीं होता। हम भी यदि भारत से मानव-जाति की सबसे बड़ी समस्या का वजूद मिटाने और धन के न्यायपूर्ण बंटवारे के प्रति गंभीर हैं तो हमें डाइवर्सिटी के लिए सघन जन जागरण चलाने के साथ ही सरकारी और निजी क्षेत्र की उन नई-पुरानी सभी परियोजनाओं/प्रतिष्ठानों का संगठित विरोध करना होगा जहां सामाजिक और लैंगिक की अनदेखी हो रही है।

**जय भीम!** **जय भारत!** **जय डाइवर्सिटी!**

❑ ❑ ❑